आज कल परसों

विमल मित्र

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

आज कल परसों

इस एक जीवन में न जाने कितने लोगों को देखा है। कितने ही उत्थान और पतनों का मौन दर्शक रहा…पता नहीं इसका कभी हिसाब लगा सकूंगा भी या नहीं। जवानी के जोश में भरे लोगों के गर्व को देखा और बुढ़ापे के बोझ से लदे असहाय चेहरों का भी साक्षी बनना पड़ा है इस जीवन में। अहम् सक्षम को भी नहीं शोभता और अक्षम के लिए तो अहम् एक मज़ाक ही है। जो कहता है अहम् या घमंड यौवन का धर्म है, वह सच नहीं कहता… यह मैं किसे समझाऊं? अहम् चाहे यौवन का हो चाहे सम्मान का, स्वरूप का हो या धन का, प्रतिष्ठा का हो या मान का…इसका असर जीवन-भर ढोना पड़ता है। इतिहास यह बताता है कि अतीत में जो कुछ हुआ है, वही भविष्य में भी होकर रहेगा। व्यतिक्रम यदि किसी चीज़ का होता है तो वह केवल बाहरी स्वरूप का। जैसे अतीत से लेकर आज तक प्रकृति में कोई भी परिवर्तन नहीं आया, उसी तरह मनुष्य भी कभी नहीं बदला है। हम ही आज जवान हैं ऐसी तो कोई बात नहीं, अतीत के मनुष्य के पास भी यौवन था। उसके पास भी जोश था, अहम् था। आज के युग के इस सुजात की तरह उन्होंने भी विश्व-विजय के अहंकार से धरती पर हलचल पैदा कर दी थी। लेकिन…

इससे तो अच्छा होगा कि मैं पूरी कहानी सुनाऊं शुरू से। सुनिए! सुजात मेरा पुराना दोस्त था। सुजातकुमार सान्याल। कभी इस नाम से सभी परिचित थे। दशहरे या दीपावली में पत्रिकाओं के विशेषांकों में कहानियां और उपन्यासों के लिए उसके पास प्रकाशकों की भीड़ लग जाती थी। उसकी किताबें बाज़ार में आते ही बिक जाती थीं। लोग ऐसा कहते थे कि शरत्चन्द्र के बाद सुजात

न्याल ही भावी युग का लेखक है। जगह-ज़गह से उसके पा[स] ती थीं। सभी चिट्ठियों का जवाब वह स्वयं नहीं लिख पाता था। इसलिए क सहयोगी उसे रखना पड़ा था। कहीं से अभिनंदन-पत्र आता तो कहीं से प्रशंसा-त्र। कालेज के प्राध्यापक उसके साहित्य पर निबंध लिखते। अखबारों में उसके फ़ोटो छपते। किसी पत्रिका ने उसकी जीवनी भी छापी थी। समाज सचेतक लेखक के रूप में उसकी प्रतिष्ठा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी।

एक बार बरानगर के निवासियों ने उसकी पैंतीसवीं वर्षगांठ बड़ी धूमधाम के साथ मनाई थी। उसके इर्द-गिर्द हमेशा ही असंख्य भक्त शिष्यों की भीड़ लगी रहती। याद आता है, उस दिन सुशांत ने एक लम्बा भाषण भी दिया था। वास्तव में सुशांत बड़ा ज्ञानी, विनयी और ऊंचे आदर्शों का व्यक्ति था। आम लोगों के सुख-दुःख आनन्द-वेदना, कामना-वासना में वह घुल-मिल गया था। उस भाषण के दौरान अन्य लोगों के साथ मैंने भी यह मान लिया था कि जीवन में स्वयं को बड़ा बनाना ही बड़ी बात नहीं है। एक-दूसरे की अनुभूति को समझना और उसे अपनाकर उसमें हाथ बंटाना ही सच्ची मानवता है। अपने भाषण में इसी बात को वह बड़े मधुर ढंग से समझा रहा था। इतना ही नहीं, उसने कहा था—जो पुष्पहार आपने मुझे दिया, उसे मैं सर्वशक्तिमान और परम करुणामय को अर्पित कर रहा हूं।

सुशांत का भाषण सुनकर, मेरी आंखों में आंसू भर आए थे। लग रहा था, इस सुशांत सान्याल को तो मैं पहचानता ही नहीं। राजमार्ग का जो गृहस्थ आदमी मेरा दोस्त है, उसके अन्दर के इस लेखक से मैं बिल्कुल अपरिचित हूं। सुशांत मेरा दोस्त था, इससे मैं अपने को भी धन्य समझता था। पर सुशांत केवल मेरा ही नहीं सबों का था। मैं उसे जितना प्यार या सम्मान देता वह पूरी तरह से उसके पास तक पहुंच भी नहीं पाता था। उसके भक्तों और शिष्यों के बीच बंट जाता। पहले सुशांत केवल मेरा ही दोस्त था, पर आज वह सबका प्रिय है। प्रसिद्धि के बाद से मेरा अकेले का न होकर वह जनता का हो गया।

उसकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं था। जब सुशांत सम्मान के शिखर पर पहुंच गया, मैं अज्ञात ही रहा। लेकिन इसके लिए मेरे मन में कोई भी आक्रोश नहीं था, क्योंकि सुशांत को मैं मानता और प्यार करता था। लोग जब उसकी

तारीफ करते तब मानो मुझे भी उसका हिस्सा मिलता। मैं विख्यात नहीं हूं, पर मेरा दोस्त सुशांत तो विख्यात है। उसकी ख्याति मेरी ख्याति है। उसका गौरव मेरा गौरव है।

इसी सुशांत सान्याल ने अचानक एक दिन लिखना छोड़ दिया। बंगाल में बहुतेरे लेखकों ने नाम भी कमाया, फिर खो भी गए। शरत्चन्द्र के बाद करीब पचास प्रसिद्ध लेखकों का यही परिणाम रहा है। कभी लोगों ने बड़े चाव से इनकी किताबें पढ़ी हैं, साहित्य-सभा का सभापति बनाया है, फिर धीरे-धीरे जब ख्याति कम हो गई तब लोगों ने उन्हें भुला भी दिया है।

लेकिन सुशांत की बात ही और है। सम्मान के शिखर पर पहुंचकर उसने लिखना छोड़ दिया। उसके बाद कई साल बीते, उसकी कोई रचना नहीं छपी कोई उपन्यास नहीं छपा। सुशांत सान्याल को भी उसके पाठक भूल गए। आज तो कुछ ऐसे पाठक भी मिलेंगे, जिन्होंने सुशांत का नाम भी नहीं सुना है···परन्तु सुशांत सान्याल आज भी जीवित है। इसी कलकत्ता शहर में बुढ़ापे के बोझ से लदा असमर्थ, असहाय सड़क में बेकार घूमता फिर रहा है।

यह सब क्यों और कैसे हुआ?

बचपन में सुशांत कहा करता था—जीवन में तुम्हारी कोई कुछ नहीं सुनेगा, कोई तेरी खुशामद नहीं करेगा, फिर मुझे अपनी बात सबको सुनानी पड़ेगी। अपने को सबसे परिचित करवाना होगा। कभी-कभी मैं कहता—किसे पड़ी है कि मेरी बात सुने? मैं कौन हूं?

सुशांत बोलता—कोई भी कुछ नहीं है। जन्म से कोई कुछ नहीं बन जाता। स्वयं के परिश्रम से ही कुछ बनना पड़ता है। शुरू में सभी शून्य रहते हैं, बाद में पूर्ण।

मैं पूछता—पूर्ण कैसे बनूंगा?

सुशांत कहता—आत्म-प्रकाश के द्वारा।

—आत्मा-प्रकाश कैसे पाऊं, मैं फिर पूछता। सुशांत कहता—मनुष्य कई उपायों से महान बन सकता है। कोई संगीत के माध्यम से तो कोई चित्रांकन द्वारा, कोई कविता, कहानी अथवा उपन्यास लिखकर और कोई अच्छे कपड़े

पहनकर या फिर घर सजाकर। थोड़ी देर रुककर फिर बोलता—'तुझे मालूम है, अपने को व्यक्त करने का सबसे अच्छा माध्यम है साहित्य। जो लेखक है, वह मृत्यु के पश्चात् भी अपनी किताबों में जीवित रहता है, प्रकाशमान रहता है। इसलिए मेरी साहित्यिक ही बनने की चाह है। मैं लोगों के दिलों में जीना चाहता हूं। मनुष्य के इस नश्वर जगत् में मैं अमर होना चाहता हूं।

यह सारी बचपन की बात है।

बचपन की कल्पना में कितनी बार हम लोग स्वर्ग-नरक तक घूम आते हैं। आज सुशांत को उन दिनों की बातें याद आती हैं या नहीं, मुझे नहीं मालूम। लेकिन मैं कुछ भी नहीं भूल सका हूं। सुशांत बहुत गरीब था। हम लोगों से भी ज्यादा। कभी-कभी तो उसे भरपेट खाना भी नहीं मिलता था। उन दिनों आज की तरह महंगाई नहीं थी, फिर भी वह अच्छे कपड़े नहीं पहन पाता था। कई बार मेरे घर आकर उसने मेरे नाश्ते में हिस्सा लिया है। अपने कपड़े के जूते भी मैंने उसे पहनने को दिए हैं। और उसने निर्विकार भाव से उसे लिया है। फिर भी इसके लिए न तो वह मेरी नजरों से गिरा और न ही उसमें कोई हीन भावना आई। बड़ी गम्भीरता से वह बड़े लोगों की जीवनी सुनाया करता था। बड़ा भाई जिस तरह छोटे भाई को निर्देश देता है, उसी तरह वह मुझे सब कुछ समझाता था, जबकि हम दोनों एक ही उम्र के थे।

कुछ लोग बचपन से ही दूसरों के गुरु बन जाते हैं। सुशांत उसी श्रेणी का आदमी था।

मैं भी उसे बड़ों का ही सम्मान देता था। प्यार और श्रद्धा करता था।

इस प्यार और श्रद्‌धा के बदले वह अपने को ऊंचाई पर रखकर मुझे उपदेश देता था, और मैं सिर झुकाकर उसके उपदेश या निर्देश का पालन करता था।

कभी-कभी वह बोलता—तेरा कुछ नहीं होगा। पर उसके प्रोत्साहन के के अभाव ने मुझे कभी निरुत्साहित नहीं किया। उसपर मेरी श्रद्‌धा बनी ही रहती और मैं उसे और ज्यादा मानने लगता।

हमारे घर के पास एक तालाब था। कभी-कभी हम लोग वहां मछली पकड़ने जाया करते। सुशांत कहता—पाठक भी इसी मछली की तरह हैं, अच्छा चारा डालो ज़रूर फंसेगा। और फिर छोड़कर भाग भी न सकेगा। साहित्य के

सम्बन्ध मे उसका जो ज्ञान था, उसका कारण था । वह कम उम्र से ही उपन्यास, नाटक आदि खूब पढ़ता था । उसके घर मे इसके लिए कभी कोई आपत्ति भी न होती । मैं भी पढ़ता था, परन्तु लुक-छिपकर । सुशांत के कारण ही मैं भी कुछ ऐसी किताबें पढ़ सका था । लेकिन पूरी किताब कभी भी नहीं पढ़ पाया । किताब को समाप्त करने से पहले ही वह किताब वापस कर आता था । हमारे घर के नियम कुछ और ही थे । मेरे अभिभावको का कहना था—नाटक या उपन्यास पढ़ने से चरित्र खराब हो जाता है । मेरी मां कहती—अभी यह सब पढ़ने की जरूरत नही । सोलह वर्ष के पहले ऐसी किताबें पढ़नी ही नही चाहिए । लेकिन सुशान्त पर कोई ऐसी रोक नही थी। कीड़े की भांति नाटकों और उपन्यासों को चाट जाता और उसी कम उम्र मे उसने कहानी लिखनी भी शुरू कर दी थी । जो कुछ लिखता मुझे जरूर दिखाता ।

पूछता—कैसा लगा तुझे ?

मैं जवाब देता—बहुत अच्छा ।

वास्तव मे उसका लिखा मुझे बहुत पसन्द था ।

उसकी क्षमता से मैं प्रभावित था। अवाक् होकर सोचता—सुशान्त की तरह मैं कब लिख सकूगा !

सुशान्त बोलता—लिखोगे, जरूर लिखोगे ! पहले मैं जो लिखता हू उसे ध्यान से सुनो, फिर एक दिन हमारी तरह तुम भी लिखोगे ।

सुशान्त अपने लेखों की एक प्रति अपने पास रखता और दूसरी पत्रिकाओं को भेजता था । परन्तु पांच-छह महीने के अन्दर ही वह वापस लौट आतीं । एक भी नही छपती ।

सुशान्त कहता—जान-पहचान नही रहने से सम्पादक किसी का लेख नहीं छापते ।

सुशान्त की बातों से मुझे कुछ ऐसा ही विश्वास हो गया था कि पत्रिकाओं मे जो कुछ छपता है उसके लेखकों के साथ सम्पादक की जान-पहचान रहती है ।

इसी कुतूहल के कारण कभी-कभी मैं पूछता—लेकिन दूसरे शहर के लेखकों के साथ सम्पादक की जान-पहचान कैसे हो सकती है ?

सुशान्त कहता—चिट्ठी-पत्री के माध्यम से सम्पादक की खुशामद करते

होंगे और खुशामद से कौन नहीं पिघलता ?

मैं कहता—फिर तू क्यों नहीं खुशामद करता ? सुशान्त कहता—मैं क्यों खुशामद करने जाऊं। मैं अच्छा लिखता हूं। देखना, एक न एक दिन उन्हें छापना ही पड़ेगा। जो कहनियां वे छापते हैं उससे मेरी कहनियां बहुत अच्छी हैं।—इसी तरह सब चल रहा था। समय गुज़र रहा था, पर सुशान्त निराश नहीं था। हर महीने हर वर्ष वह कहनियां भेजता रहा और हर बार उचित समय पर बुक-पोस्ट से कहनियां वापस आती रहीं।

मैं उसके धैर्य, सहनशीलता और अथक परिश्रम को देखकर अवाक् रह जाता। मन ही मन कहता—सुशान्त एक न एक दिन ज़रूर नाम कमाएगा।

उस समय सुशान्त ही मेरा एकमात्र आदर्श था। मैं सोचता—जब मैं सोलह वर्ष का हो जाऊंगा तब कहानियां, नाटक, उपन्यास आदि पढ़कर लिखना सीखूंगा और हर महीने, हर वर्ष पत्रिका कार्यालय में कहानियां भेजता रहूंगा।

याद आ रहा है—एक दिन सुशान्त की एक कहानी छप गई। पत्रिका का नाम आज याद नहीं है। तीन-चार पन्नों की कहानी थी। सुशान्त सान्याल का नाम भी छपा था।

मैं अचरज में पड़ गया। कहानी मेरी पढ़ी हुई थी, फिर भी छपे अक्षरों में उसे पढ़ने में बहुत खुशी हो रही थी। लग रहा था—सुशान्त मुझसे एकाएक बहुत ऊपर चढ़ गया है। देश के लोग उसके नाम से परिचित हो गए हैं। रातों-रात वह प्रसिद्ध हो गया है।

मैं मुग्ध होकर उसे देखता रहा।

एक बार मैंने पूछा—कैसे छपा रे ?

सुशान्त बोला—मेरे लिखने के गुणों पर। सम्पादक की खुशामद मैंने नहीं की। हमेशा की तरह मैंने डाक से कहानी भेजी, और देख ही रहे हो, छप भी गई। तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, मेरी कोई भी जान-पहचान नहीं थी।

मैंने सुशांत से कहा—तेरा तो और नाम होगा, लेकिन मुझे भूलना मत।

सुशान्त बोला—फिज़ूल बातें मत किया कर। जीवन में बड़ा बनने के लिए सबको भूलना पड़ता है। पीछे का खिंचाव—मोह रहेगा तो आगे कैसे बढ़ूंगा ? उसने सच्ची ही बात कही थी। बाद में तो उसके मन में किसीके लिए दया नहीं

थी। उसने जिस तरह बचपन से ही बडा बनने का स्वप्न देखा था, उसी तरह से बडा हो जाने के बाद और किसीकी बात उसने याद ही नही रखी।

हम दोनों मैट्रिक की परीक्षा के लिए साथ ही बैठे थे। लेकिन सुशान्त सफल न हो सका। रिजल्ट निकलने के दूसरे दिन ही मैं उसके घर गया। सोच रहा था, उसे अपना मुह कैसे दिखाऊं।

वह फेल हो गया है, इसके लिए मानो मैं ही अपराधी था। परन्तु दुख के दिनो में उसके पास नही जाऊंगा, यह भी नही सोच सकता था। लेकिन वहा जाकर मैं घबरा-सा गया। वह बेसुध होकर कुछ लिख रहा था। एक बार मेरी तरफ आंख उठाकर देखा, फिर लिखने मे डूब गया, बोला—तू बैठ, मैं यह पन्ना खत्म कर लेता हू।

मैं चुपचाप बैठा रहा। जीवन के सुख-दुख के प्रति जो निर्विकार है, सम्भवतः ससार-संग्राम मे उसीकी जीत हो सकती है। सुशान्त को देखकर मुझे ऐसा लग रहा था। परीक्षा मे सफल होकर भी मैं सुशान्त से छोटा ही रह गया।

थोड़ी देर बाद लिखना बन्द कर वह बोला—मैं फेल हो गया हूं, तुम्हें मालूम ही होगा।

मैंने कहा—हा, इसलिए तो आया हूं···

सुशान्त बोला—सफल होना अच्छा है, लेकिन फेल होना भी बुरा नहीं है। जीवन की आखिरी परीक्षा मे पास करना ही असली सफलता है। वहा जो उत्तीर्ण होगा, जीवन मे जीत उसीकी है। तूने पास किया है, इसलिए मैं तुझसे ईर्ष्या नही करता। मैं फेल हो गया हूं इसके लिए न ही मेरे मन में कोई क्षोभ है।

इसका उत्तर मैं क्या दे सकता था, समझ में नही आया, फिर भी मैंने कहा—नही, नहीं। मैं इसलिए थोड़े ही तेरे पास आया हूं। तू मन मे कुछ सोच सकता है, इसलिए आया था।

आज याद करता हू—उस दिन उसे सात्वना देने गया था, पर उपदेश लेकर वापस लौटा। वास्तव में कौन बड़ा है, कौन छोटा, आरम्भ देखकर उसपर विचार नही हो सकता, अन्त देखकर ही सोचा जा सकता है।

मैं जानता था कि जीवन की अन्तिम परीक्षा में सुशान्त मुझे मात दे जाएगा। लेकिन मैं कभी इसके लिए शर्मिन्दा नही हुआ क्योंकि सुशान्त हर दृष्टि

से मुझसे बड़ा था।

आज इतने वर्षों के बाद सुशान्त के लिए जितना सोचता हूं उतनी ही हैरानी होती है। आज पता नहीं, वह कहां है और मैं कहां हूं। दोनों के बीच ऐसी दीवार है, जिसे हम लांघ नहीं सकते।

आज सुशान्त को कोई नहीं जानता और मुझे सभा-समितियों में बुलाने के लिए होड़ मच जाती है।

सुशान्त के पास एक पैतृक कोठी थी। पुराने ढंग के इस मकान का आधा हिस्सा किराये पर चढ़ा हुआ था। इसी किराये के पैसे से उसका गुज़ारा हो जाता था। परिवार में लोग भी कम थे। सुशान्त और उसकी विधवा बूढ़ी मां। बेचारी बूढ़ी मां को पता भी नहीं था कि उसका लड़का कितनी बड़ी प्रतिभा लेकर जन्मा है।

मैट्रिक की परीक्षा के बाद सुशान्त से मेरी भेंट कम होने लगी। मैंने कालेज में दाखिला ले लिया था। नये दोस्तों के बीच व्यस्त हो गया। पहले तो उसके लिए मैं थोड़ा उदास रहता और मौका मिलते ही उसके घर चला जाता। पर, वह कभी भी घर पर नहीं मिलता। सुबह से लेकर रात के दस बजे तक वह कहां फिरता रहता, उसकी मां भी नहीं बता पाती। सुशान्त का हालचाल भी किसीसे मालूम नहीं पड़ता।

बहुत दिनों के बाद एक दिन मैं कालेज से लौट रहा था कि सुशान्त से भेंट हो गई। मैं मधु गुप्ता लेन से पैदल चला आ रहा था।

मैंने पीछे से आवाज़ दी—सुशान्त, सुशान्त। सुशान्त ने सिर फेरकर मुझे देखा। बोला—अरे तू यहां?

—मैं तो कालेज से लौट रहा हूं पर तू इधर कहां आया था?

इस बात का जवाब न देकर सुशान्त ने,कहा—मेरे साथ चला आ। फिर एक तरह से मुझे खींचकर वह एक मकान के सामने जाकर चिल्लाने लगा—चाची, ओ चाची! भीतर से किसी महिला की आवाज़ सुनाई पड़ी।

—कौन? सुशान्त।

दरवाज़ा खुल गया। सामने ही एक महिला साफ कपड़े और हाथ तथा कानों

में मामूली-से आभूषण पहने, मुख पर एक मृदु हास्य लिए खड़ी थी। बोली—यह कौन है बेटा ? मैं पहचान नहीं पाई।

अन्दर जाते हुए सुशान्त बोला—यह मेरा दोस्त है। हम दोनों एकसाथ पढ़ते थे।

—आओ बेटे, आओ !

उस महिला के पीछे-पीछे हम दोनों उस छोटे-से मकान के अन्दर पहुंचे। हम लोगों को बैठाकर उसने पुकारा—पाखी, ओ पाखी !

एक लड़की दौड़ती हुई कमरे के अन्दर आई और चीख पड़ी—सुशान्त जी ! इतनी देर ? मैं कब से आपकी राह देख रही हूं।

मेरी ओर नज़र पड़ते ही पूछ बैठी—आपके साथ यह कौन है सुशान्त जी ?

पाखी की मां बोली—तुम लोग बैठो। मैं अभी आई।

मुझे कुछ अजीब-सा लग रहा था। पुराने ढंग का मकान। मोटी-मोटी दीवारें। खिड़कियां जालों से घिरी। लग रहा था, दिन में बत्ती के बिना कुछ दिखेगा नहीं। कमरा छोटी-मोटी चीज़ों से लदा हुआ था। एक पर एक कई बक्स रखे हुए थे। उनपर साड़ियों के किनारों से बनी खोलें चढ़ा दी गई थीं। एक तरफ पलंग था। उसपर सफ़ेद चादर बिछी हुई थी। दो तकिये और दो मसनद भी थे। दीवार में कार्पेट की बनी शिवलिंग की एक तस्वीर थी। उसपर लाल धागे से लिखा हुआ था 'ओम् नमः शिवाय'। मैं बेमन से इधर-उधर नज़र दौड़ा रहा था। पाखी खिलखिलाकर बके जा रही थी। मैं कुछ भी नहीं सुन पा रहा था। ऐसे भी मैं बड़ा संकोची हूं। और घटनाचक्र से मैं और भी दब गया था। पंखे के नीचे मैं भी पसीने-पसीने हो रहा था। बार-बार लग रहा था—मैं यहां क्यों आया ? ये लोग सुशान्त के कौन हैं ? यह औरत सुशान्त की कैसी चाची है ? सुशान्त से मैंने कभी नहीं सुना था कि उसकी ऐसी कोई चाची भी है। मांग में सिन्दूर नहीं, महिला विधवा थी, परन्तु चाल-ढाल से सधवा लग रही थी। मुंह में पान था। हाथ और कानों में गहने। पाखी से सुशान्त की कब दोस्ती हुई ? मैं सोच ही रहा था कि देखा, सुशान्त ने पाकिट से एक रुपया निकालकर पाखी को दिया और बोला—अपनी नौकरानी से कहो, मिठाई ले आएगी।

पाखी ने बिना हिचक रुपया रख लिया।

सुशान्त ने मेरी तरफ देखकर पूछा—क्यों कौन-सी मिठाई तुम्हें पसन्द है ?

से मुझसे बड़ा था।

आज इतने वर्षों के बाद सुशान्त के लिए जितना सोचता हूं उतनी ही हैरानी होती है। आज पता नहीं, वह कहां है और मैं कहां हूं। दोनों के बीच ऐसी दीवार है, जिसे हम लांघ नहीं सकते।

आज सुशान्त को कोई नहीं जानता और मुझे सभा-समितियों में बुलाने के लिए होड़ मच जाती है।

सुशान्त के पास एक पैतृक कोठी थी। पुराने ढंग के इस मकान का आधा हिस्सा किराये पर चढ़ा हुआ था। इसी किराये के पैसे से उसका गुज़ारा हो जाता था। परिवार में लोग भी कम थे। सुशान्त और उसकी विधवा बूढ़ी मां। बेचारी बूढ़ी मां को पता भी नहीं था कि उसका लड़का कितनी बड़ी प्रतिभा लेकर जन्मा है।

मैट्रिक की परीक्षा के बाद सुशान्त से मेरी भेंट कम होने लगी। मैंने कालेज में दाखिला ले लिया था। नये दोस्तों के बीच व्यस्त हो गया। पहले तो उसके लिए मैं थोड़ा उदास रहता और मौका मिलते ही उसके घर चला जाता। पर, वह कभी भी घर पर नहीं मिलता। सुबह से लेकर रात के दस बजे तक वह कहां फिरता रहता, उसकी मां भी नहीं बता पाती। सुशान्त का हालचाल भी किसीसे मालूम नहीं पड़ता।

बहुत दिनों के बाद एक दिन मैं कालेज से लौट रहा था कि सुशान्त से भेंट हो गई। मैं मधु गुप्ता लेन से पैदल चला आ रहा था।

मैंने पीछे से आवाज़ दी—सुशान्त, सुशान्त। सुशान्त ने सिर फेरकर मुझे देखा। बोला—अरे तू यहां ?

—मैं तो कालेज से लौट रहा हूं पर तू इधर कहां आया था ?

इस बात का जवाब न देकर सुशान्त ने,कहा—मेरे साथ चला आ। फिर एक तरह से मुझे खींचकर वह एक मकान के सामने जाकर चिल्लाने लगा—चाची, ओ चाची ! भीतर से किसी महिला की आवाज़ सुनाई पड़ी।

—कौन ? सुशान्त।

दरवाज़ा खुल गया। सामने ही एक महिला साफ कपड़े और हाथ तथा कानों

मे मामूली-से आभूषण पहने, मुख पर एक मृदु हास्य लिए खड़ी थी। बोली—यह कौन है बेटा ? मैं पहचान नहीं पाई।

अन्दर जाते हुए सुशान्त बोला—यह मेरा दोस्त है। हम दोनों एकसाथ पढ़ते थे।

—आओ बेटे, आओ !

उस महिला के पीछे-पीछे हम दोनों उस छोटे-से मकान के अन्दर पहुंचे। हम लोगों को बैठाकर उसने पुकारा—पाखी, ओ पाखी !

एक लड़की दौड़ती हुई कमरे के अन्दर आई और चीख पड़ी—सुशान्त जी ! इतनी देर ? मैं कब से आपकी राह देख रही हूं।

मेरी ओर नज़र पड़ते ही पूछ बैठी—आपके साथ यह कौन है सुशान्त जी ?

पाखी की मां बोली—तुम लोग बैठो। मैं अभी आई।

मुझे कुछ अजीब-सा लग रहा था। पुराने ढंग का मकान। मोटी-मोटी दीवारें। खिड़कियां जालों से घिरी। लग रहा था, दिन में बत्ती के बिना कुछ दिखेगा नहीं। कमरा छोटी-मोटी चीज़ों से लदा हुआ था। एक पर एक कई बक्स रखे हुए थे। उनपर साड़ियों के किनारों से बनी खोलें चढ़ा दी गई थी। एक तरफ पलंग था। उसपर सफेद चादर बिछी हुई थी। दो तकियें और दो मसनद भी थे। दीवार में कार्पेट की बनी शिवलिंग की एक तस्वीर थी। उसपर लाल धागे से लिखा हुआ था 'ओम् नमः शिवाय'। मैं बेमन से इधर-उधर नज़र दौड़ा रहा था। पाखी खिलखिलाकर बके जा रही थी। मैं कुछ भी नहीं सुन पा रहा था। ऐसे भी मैं बड़ा संकोची हूं। और घटनाचक्र से मैं और भी दब गया था। पंखे के नीचे मैं भी पसीने-पसीने हो रहा था। बार-बार लग रहा था—मैं यहां क्यों आया ? ये लोग सुशान्त के कौन हैं ? यह औरत सुशान्त की कैसी चाची है ? सुशान्त से मैंने कभी नहीं सुना था कि उसकी ऐसी कोई चाची भी है। मांग में सिन्दूर नहीं, महिला विधवा थी, परन्तु चाल-ढाल से सधवा लग रही थी। मुंह में पान था। हाथ और कानों में गहने। पाखी से सुशान्त की कब दोस्ती हुई ? मैं सोच ही रहा था कि देखा, सुशान्त ने पाकिट से एक रुपया निकालकर पाखी को दिया और बोला—अपनी नौकरानी से कहो, मिठाई ले आएगी।

पाखी ने बिना हिचक रुपया रख लिया।

सुशान्त ने मेरी तरफ देखकर पूछा—क्यों कौन-सी मिठाई तुम्हें पसन्द है ?

मेरी खाने की इच्छा नहीं थी। बोला—मेरे लिए कुछ भी मगवाने की जरूरत नहीं।

सुशान्त बोला—यह कैसे हो सकता है? कुछ तो तुझे खाना ही पड़ेगा, नहीं तो चाची नाराज़ होंगी।

फिर मेरी सम्मति के बिना ही उसने पाखी को और एक रुपया निकालकर दिया और बोला—सब के लिए रसगुल्ले और पेड़े मंगवा लो। पाखी रुपया लेकर चली गई।

मैंने चैन की सांस ली। लगा, बुखार उतर गया है। सुशान्त से पूछना चाहा—ये लोग तुम्हारे कौन हैं? पर उसके पहले ही सुशान्त हंसकर बोला—क्यों, कैसी लगी?

मैं उसकी हंसी का अर्थ नहीं समझ सका। इसलिए फिर पूछा—ये लोग तुम्हारे कौन लगते हैं?

सुशान्त निर्विकार ढंग से बोला—मेरी चाची···मेरी···

—और यह लड़की, पाखी?

सुशान्त बोला—पाखी, मान लो बहन लगती है।

मैं ताज्जुब में पड़ गया। फिर भी सुशान्त से पूछ बैठा—लेकिन अब तक तो कोई तो चाचा या चाची नहीं थी। चचेरी बहन के लिए भी कभी तुमने कुछ नहीं कहा।

सुशान्त हंसकर बोला—धत्। यह कोई मेरे कुल की चाची थोड़े ही है। ऐसे ही मोहल्ले की चाची है।

—इन लोगों के साथ तुम्हारी जान-पहचान किस तरह हुई?

सुशान्त बोला—ऐसे ही घूमते-फिरते हो गई। कहानी लिखने के लिए मैं पूरे कलकत्ता का चक्कर लगाता हूं। जहां कुछ भी मसाला मिल जाता है, कापी में नोट कर लेता हूं कि बाद में कहानी लिखने में काम आएगा।

—इसके लिए तुझे रुपये भी खर्च करने पड़ते हैं?

—हां, सो तो है ही। पैसे के बिना दुनिया में मिलता ही क्या है?

मैंने पूछा—इनके परिवार में और कौन-कौन हैं?

—और तो कोई नहीं। बस मां और बेटी।

—क्यों? पाखी के पिताजी नहीं हैं?

—नहीं। पिता, चाचा, ताऊ, मौसा कहीं कोई नहीं है।

—फिर इनका घर कैसे चलता है?

सुशान्त बोला—मैं चलाता हूं। इसके अलावा कलकत्ता में और भी नवयुवक हैं, वे भी चलाते हैं।

—मकान का किराया कितना लगता है?

—तीस रुपए किराया है। मैं उसका वन थर्ड (एक तिहाई) देता हूं।

मेरा कुतूहल बढ़ता ही जा रहा था। मैंने पूछा—लेकिन किराये के अलावा भी तो खर्च हैं, जैसे—अनाज, धोबी, तेल, साबुन, पढ़ने-लिखने का सामान आदि?

—हां। इन लोगों के पीछे करीब तीस व चालीस रुपये का खर्च मेरा है। लेकिन उससे मेरा कोई नुकसान नहीं। यह घाटा मैं किताब लिखकर वसूल कर लूंगा।

—पाखी की शादी तुझे करवानी भी पड़ेगी क्या?—मैंने पूछा।

सुशान्त बोला—धत्! शादी हो जाने पर मेरी कहानी का क्या होगा? जब तक शादी नहीं होती है, तभी तक मेरी कहानी की खुराक है यह। शादी हो जाने पर तो मैं इस घर में आना भी छोड़ दूंगा। कहानी भी अधूरी रह जाएगी।

मैं चुप रहा। सुशान्त के लिए मन में श्रद्धा हुई। कहानी के प्लाट के लिए कठिन परिश्रम के बिना ही क्या कोई शरत्चन्द्र की तरह लेखक बन सकता है?

इतने में चाची दो कप चाय लेकर आई। बोली—चाय पी लो बेटे!

सुशान्त बोला—पहले तो मिठाई खाऊंगा। पाखी मिठाई मंगवा रही है।

चाची बोली—मिठाई मंगवाने का झंझट क्यों किया? पिक्चर जो छूट जाएगी।

सुशान्त बोला—मेरा दोस्त आज पहली बार यहां आया है। इसलिए मुंह मीठा करवा रहा हूं।

बातचीत के बीच में ही पाखी मिठाई लेकर पहुंच गई थी।

सुशांत उसके हाथ से मिठाई की प्लेट लेकर मेरी तरफ बढ़ाकर बोला—ले खा ले। इसे अपना ही घर समझना। चाची भी अपनी चाची की ही तरह है—क्यों? फिर एक मिठाई लेकर प्लेट चाची की तरफ बढ़ाकर बोला—

चाची, तुम भी थोड़ा लो।

चाची बोली—फिजूल में सब के लिए मिठाई मंगवा ली। यह रुपया और किसी काम में आता।

सुशांत बोला—क्यों ? खाना क्या फिजूलखर्ची है ?

चाची बोली—नहीं, यह बात नहीं। लेकिन कल राशन लेने की तारीख है—यह तो तुम्हें पता होगा।

—लेकिन उस दिन मैं दस रुपये का एक नोट तो दे गया था।

चाची हिसाब बताने लगी—दस रुपये में साढ़े सात रुपये का पिछले हफ्ते का राशन आया। बाकी ढाई रुपये में डेढ़ रुपये पाखी की सिल्क की साड़ी की की धुलाई में खर्च हो गए। हाथ में रहा एक रुपया। उसमें से आठ आने में आधा किलो आलू खरीदा है अब आठ आने की पूंजी बची है।

सुशांत मेरी तरफ देखकर बोला—देख रहे हो न ! मेरी चाची कितने हिसाब से चलती हैं।

पाखी दो गिलास पानी रख गई थी। सुशांत पानी पीकर एक दस रुपये का नोट निकालकर चाची को देते हुए बोला—इस महीने मेरा बहुत खर्च हो गया है।

चाची नोट को रखती हुई बोली—तुम बहुत फिजूल खर्च करते हो। आज-कल थोड़ा समझ-बूझकर चलना चाहिए। पिछले महीने ही तो पाखी को सैंडल खरीदकर दिया है। फिर इस महीने साड़ी खरीदने की क्या ज़रूरत थी। वह भी तो तुम्हारी तरह नासमझ है। कहां से इतना रुपया आएगा, समझती ही नहीं। सोचती होगी, तुम्हारे पास रुपयों का कोई पेड़ है !

इतना कहकर खाली कप-प्लेटों को उठाती हुई चाची अन्दर चली गई।

सुशान्त ने पाखी से पूछा—क्या हुआ ? चाची अचानक नाराज़ हो गई।

पाखी बोली—मां हमेशा नाराज़ ही रहती है, तुम फिक्र मत करो। चलो घूमने चलें।

मैं भी सुशान्त के साथ बाहर निकल आया।

चाची दौड़ती हुई आई। बोली—क्यों बेटे, बाहर घूमने जा रहे हो ? रात का खाना यहीं खाना।

सुशान्त बोला—नहीं चाची, बाहर कहीं खा लूंगा।

बाहर निकलते ही सुशान्त मुझे कुछ रुपये देते हुए बोला—इसे अपने पास रख लो !

और इतना कहकर सुशान्त ने कुछ रुपये मुझे थमा दिए।

मैंने गिनकर देखे तो एक-एक रुपये के पाच नोट थे।

सुशान्त ने पूछा—तेरे पास कुछ और रुपये हैं क्या ?

—हां करीब दो रुपये।

सुशान्त बोला—चलो, काम चल जाएगा।

तब तक पाखी भी तैयार होकर आ गई। मैंने चारों तरफ नजर दौड़ाई। मधु गुप्ता लेन के लोग हमें घूर रहे थे। मुझे बेहद शर्म आ रही थी। लग रहा था, वे मुझे भी इन्ही लोगो मे से एक समझ रहे हैं। सोचते होगे मैं भी इस लड़की के पीछे पैसे लुटाने के लिए इस घर मे आ जुटा हूं।

सुशान्त से छुटकारा पाने के लिए मैंने कहा—मैं अब चलता हूं, यार !

सुशान्त ने झट से मेरा हाथ पकड़ लिया और बोला—क्यो, कहा जाओगे ? कोई खास काम है ?

—नही कोई खास काम तो नही।

—फिर चलो हमारे साथ।

पाखी भी बोली—चलिए न ! आपत्ति किस बात की है।

उन लोगों के अनुरोध पर मुझे आखिर जाना ही पड़ा।

चलने से पहले मैंने पूछा—तुम लोग कहां जाओगे ?

सुशान्त बोला—ऐसे ही इधर-उधर।

पाखी बोली—चलिए, न्यू मार्केट चलते हैं।

—न्यू मार्केट तो आज बन्द है, सुशान्त ने कहा।

—बन्द है ? क्यों ?

सुशान्त बोला—हड़ताल चल रही है। मेरे दोस्त से ही पूछ लो न ? फिर मेरी तरफ आंख मटकाकर इशारा करके बोला—क्यों रे ! तू ही बोल, न्यू मार्केट मे हड़ताल चल रही है या नही ?

वास्तव मे न्यू मार्केट में हड़ताल है या नहीं, मुझे मालूम नही था। मैं वहा जाता भी नहीं हूं, शहर से थोड़ी दूर मेरा घर पड़ता है। गरीब का लड़का हूं।

किताव-कापी लेकर कालेज जाता हूं और घर वापस आ जाता हूं। ज़रूरत का सामान मोहल्ले की दूकानों से ले लेता हूं लेकिन सुशान्त के इशारे से मुझे ऐसा लगा मानो वह कह रहा हो—कह दो कि हड़ताल चल रही है।

सुशान्त ने फिर पूछा—क्यों भाई, तुम्हें तो पता होगा ? न्यू मार्केट में हड़-ताल है ?

इतने में पाखी वोली—फिर हम हाथी वागान के मार्केट में चलें। अन्दर कई अच्छी-अच्छी दुकानें हैं।

सुशान्त जैसे किसी सांप को देखकर चौंक पड़ा हो। वोला—नहीं वावा, मैं नहीं जाता हाथी वागान के वाजार में। मेरा तो दम घुट जाता है।

पाखी वोली—तो फिर कहां चलें ?

सुशान्त मेरी तरफ देखकर वोला—तू ही कोई जगह वता यार !

मैं उसके इशारे को समझ गया था।

वोला—चलो, किसी पार्क में वैठकर गप-शप की जाए।

पाखी चहक उठी—ओ मां ! आप भी सुशान्त की तरह कवि हैं क्या ?

मेरे वदले जवाव सुशान्त ने दिया— अरे हां ! कवि है तभी तो मेरा दोस्त है। देखना, कभी मेरी तरह इसकी रचना भी पत्रिका में छपेगी !

मैं चुप ही रहा। पाखी भी और कुछ नहीं वोली।

मैं लिखता हूं, यह सुनकर पाखी के मन में मेरे लिए कोई अधिक आदर का भाव जागा हो ऐसा मुझे नहीं लगा।

सामने से एक वस आकर रुकने को थी कि सुशान्त झटके से उसमें चढ़ गया। पाखी और मैं नीचे भीड़ में फंसे खड़े थे। कौन पहले चढ़ेगा और कौन उतरेगा, यही धकापेल चल रही थी।

भीड़ में कहीं खो न जाए, इस डर से पाखी मुझसे सटकर खड़ी थी। एका-एक उसने मेरा एक हाथ कसकर पकड़ लिया।

धक्कम-धक्के का अन्त नहीं था। वस के अन्दर से सुशान्त ने आवाज़ दी—देर क्यों कर रहे हो, जल्दी से आ जाओ !

खैर, किसी तरह से धक्का देकर मैंने पाखी को वस के अन्दर किया और स्वयं भी छलांग लगाकर चढ़ गया। वस चल चुकी थी।

सुशान्त बोला—बस में चढ़ना भी नहीं आता। अभी दुर्घटना हो जाती तो।

पाखी बड़बड़ाने लगी—अपने दोस्त का रंग-ढंग देखा? इस तरह कंगालों की तरह ट्राम-बस में मुझे चढ़ने की आदत नहीं है। हमें तो सभी टैक्सी पर चढ़ाते हैं। इसीलिए तो मैं सुशान्त के साथ बाहर निकलना नहीं चाहती।

इसका जवाब मेरे पास नहीं था। श्याम बाज़ार के चौराहे पर आकर हम लोग उतर गए। वहां से फिर देशबन्धु पार्क पहुंचे और एकान्त-सी जगह ढूंढकर बैठ गए।

—कैसा शान्त वातावरण है! यहां आने से स्वास्थ्य सुधर जाता है, खुली स्वच्छ हवा है!—सुशान्त के शब्दों से कविता टपक रही थी।

पाखी जल उठी। बोली—स्वच्छ हवा खाकर क्या खाक होगा? जो बुड्ढे बीमार हैं वे ही स्वच्छ हवा खाने के लिए आतुर रहते हैं। हमारे लिए तो न्यू मार्केट ही अच्छा है।

सुशान्त भी चुप नहीं रहा। बोला—तुम्हारे लिए तो न्यू मार्केट अच्छा ही होगा। वहां अपना रूप-रंग दिखा सकती हो न!

पाखी मेरी तरफ देखकर बोली—अच्छा आप ही कहिए! कोई यदि देखे ही नहीं तो साड़ी-गहने, इन सब की जरूरत ही क्या है?

सुशान्त बोला—क्यों हम लोग तुमको देख रहे हैं, तुम हम लोगों को देखो।

—आज की शाम बर्बाद हो गई, पाखी भुनभुनाई।

—और दिन तो काम के होते हैं न! आज का एक दिन बर्बाद ही सही।

पाखी फिर बोली—किसी अच्छे रेस्तरां में क्यों नहीं चलते? मां को तो बोल आए कि बाहर खाकर लौटूंगा।

—अभी तुम्हें भूख भी लग गई। घर से मिठाई वगैरह खिलाकर ही तो ले आया हूं। फिर मेरी तरफ ताककर बोला—क्यों तुम्हें भूख लग गई क्या?

मैंने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

—देखो उसे भी भूख नहीं है। मेरे साथ जिस दिन निकलती हो, सुबह से उपवास किए रहती हो क्या?

सुशान्त को आखिर हो क्या गया था। उसकी इस तरह की बातों से मैं संकुचित हो रहा था। फिर भी याद है। सुशान्त हम दोनों को रेस्तरां ले गया।

मैं समझ रहा था कि सुशान्त ज्यादा रुपया नहीं खर्च करना चाहता।

लेकिन पाखी सुशान्त के पैसों को खर्च करवाने पर तुली हुई थी।

सुशान्त ने मुझसे पूछा—तेरे लिए क्या मंगवाऊं?

—मुझे बिल्कुल ही भूख नहीं है।

सुशान्त को तो भूख ही नहीं थी। इसलिए उसने पाखी से पूछा—तुम क्या खाओगी?

वेयरा आर्डर लेने के लिए खड़ा था।

पाखी बोली—कुछ भी मंगवा लो। एक फाउल-कटलेट और एक ब्रेस्ट-कटलेट, सलाद के साथ। लेकिन तुम लोग कुछ नहीं ले रहे हो, अकेले खाने में मुझे अच्छा नहीं लगेगा।

सुशान्त बोला—बस, इतना ही। एक फाउल-करी भी साथ में ले लो।

—नहीं, नहीं। दो-दो कटलेट ले रही हूं। उसके ऊपर करी नहीं चलेगी।

—इसमें क्या है। तुम्हें भूख लगी है। अच्छी तरह से खा लो। एक मीठा भी। पुडिंग मंगवा लो!

फिर उसने वेयरे से कहा—जाओ, एक फाउल-कटलेट, एक ब्रेस्ट-कटलेट, एक डिश फाउल-करी···और एक पुडिंग ले आओ।

मैं मौन दर्शक बना बैठा था। उस समय तक मैं नहीं जानता था कि सुशान्त मुझे भी विपत्ति में डालने के लिए यह सब कर रहा है। मैं सोच रहा था। मैं तो इस नाटक का कोई पात्र नहीं हूं। सुशान्त मेरा दोस्त है। वह मुझे यहां लाया है इसीलिए आया हूं। इस नाटक का सूत्रधार सुशान्त है, पाखी उसकी नटी। मैं कुछ नहीं···कोई नहीं। दाल-भात में मुसलचन्द की तरह बैठा हूं।

खाना आ गया था। पाखी खा रही थी और हम दोनों साक्षीगोपाल बने गप्प हांक रहे थे।

पाखी बोली—फाउल-करी बड़ी ही स्वादिष्ट है। सुशान्त, थोड़ा चखकर देखो न!

शायद हम लोगों के सामने बैठकर खाने में पाखी को थोड़ा संकोच हो रहा था। परन्तु भूख हो तो संकोच से फायदा क्या, इसीलिए खाने में जमकर जुट गई। वेयरा फाउल-करी के साथ ब्रेड के दो स्लाइस भी दे गया था। उसे खा लेने के बाद कटलेट की बारी आई।

पाखी का इस तरह खाना देखकर मुझे लग रहा था कि उसने बहुत दिनों से भरपेट खाया नहीं था। कटलेट पर थोड़ा मस्टर्ड पाउडर छिड़ककर उसने कांटा-चम्मच पकड़ा।

अचानक सुशान्त बोला—अरे, मैं तो एकदम भूल ही गया। बाग बाज़ार में किसीको मिलने के लिए समय दिया था। बस, मैं गया और आया! कहकर वह उठकर खड़ा हुआ।

सुशान्त की बात सुनकर हम दोनों ताज्जुब में पड़ गए। पाखी और मैं एकसाथ बोल उठे—ऐसी भी क्या बात है कि इसी वक्त जाना पड़ेगा?

सुशान्त बोला—बहुत जरूरी काम है, जाना ही पड़ेगा!

मैंने पूछा—कितनी देर में लौटोगे?

—बस, आधे घण्टे में!

इतना कहकर सुशान्त चला गया। मैं कर ही क्या सकता था। बैठा रहा।

पाखी तब तक खा ही रही थी। बोली—ऐसे ही हैं आपके दोस्त! पता नहीं कब तक वापस आएंगे?

—शायद कोई जरूरी काम है।

पाखी बोली—हज़ार काम हों, जब हम यहां आए ही हैं तब यह भी तो एक काम ही है!

—लेखक है न। भूल जाता होगा।

पाखी इस समय पुडिंग खा रही थी। बोली—आप भी लिखते हैं क्या?

—नहीं, मैं तो उसके साथ स्कूल में पढ़ता था। मैं उसकी तरह लिख नहीं सकता।

पाखी बोली—लिखकर क्या होता है? कोई पढ़ता भी है!

मैंने आश्चर्य से पूछा—क्यों आपने कोई उपन्यास नहीं पढ़ा है। शरत्‌चन्द्र की किताबें भी नहीं?

—पढ़ने की कोशिश तो की थी। लेकिन अच्छा नहीं लगा। मुझे तो बस सिनेमा देखना अच्छा लगता है। बार-बार ऐसा लगता है कि अगर सिनेमा में ऐक्टिंग करने का कोई मौका हाथ लग जाता तो अच्छा होता। अच्छा, आपका किसी सिनेमा-डायरेक्टर से परिचय है?

—नहीं।

मैं समझ रहा था कि सुशान्त ज्यादा रुपया नहीं खर्च करना चाहता।

लेकिन पाखी सुशान्त के पैसों को खर्च करवाने पर तुली हुई थी।

सुशान्त ने मुझसे पूछा—तेरे लिए क्या मंगवाऊं ?

—मुझे बिल्कुल ही भूख नहीं है।

सुशान्त को तो भूख ही नहीं थी। इसलिए उसने पाखी से पूछा—तुम क्या खाओगी ?

बेयरा आर्डर लेने के लिए खड़ा था।

पाखी बोली—कुछ भी मंगवा लो। एक फाउल-कटलेट और एक ब्रेस्ट-कटलेट, सलाद के साथ। लेकिन तुम लोग कुछ नहीं ले रहे हो, अकेले खाने में मुझे अच्छा नहीं लगेगा।

सुशान्त बोला—बस, इतना ही। एक फाउल-करी भी साथ में ले लो।

—नहीं, नहीं। दो-दो कटलेट ले रही हूं। उसके ऊपर करी नहीं चलेगी।

—इसमें क्या है। तुम्हें भूख लगी है। अच्छी तरह से खा लो। एक मीठा भी। पुडिंग मंगवा लो !

फिर उसने बेयरे से कहा—जाओ, एक फाउल-कटलेट, एक ब्रेस्ट-कटलेट, एक डिश फाउल-करी···और एक पुडिंग ले आओ।

मैं मौन दर्शक बना बैठा था। उस समय तक मैं नहीं जानता था कि सुशान्त मुझे भी विपत्ति में डालने के लिए यह सब कर रहा है। मैं सोच रहा था। मैं तो इस नाटक का कोई पात्र नहीं हूं। सुशान्त मेरा दोस्त है। वह मुझे यहां लाया है इसीलिए आया हूं। इस नाटक का सूत्रधार सुशान्त है, पाखी उसकी नटी। मैं कुछ नहीं···कोई नहीं। दाल-भात में मुसलचन्द की तरह बैठा हूं।

खाना आ गया था। पाखी खा रही थी और हम दोनों साक्षीगोपाल बने गप्प हांक रहे थे।

पाखी बोली—फाउल-करी बड़ी ही स्वादिष्ट है। सुशान्त, थोड़ा चखकर देखो न !

शायद हम लोगों के सामने बैठकर खाने में पाखी को थोड़ा संकोच हो रहा था। परन्तु भूख हो तो संकोच से फायदा क्या, इसीलिए खाने में जमकर जुट गई। बेयरा फाउल-करी के साथ ब्रेड के दो स्लाइस भी दे गया था। उसे खा लेते के बाद कटलेट की बारी आई।

पाखी का इस तरह खाना देखकर मुझे लग रहा था कि उसने बहुत दिनों से भरपेट खाया नहीं था। कटलेट पर थोड़ा मस्टर्ड पाउडर छिड़ककर उसने काटा-चम्मच पकड़ा।

अचानक सुशान्त बोला—अरे, मैं तो एकदम भूल ही गया। बाग बाजार मे किसीको मिलने के लिए समय दिया था। बस, मैं गया और आया! कहकर वह उठकर खड़ा हुआ।

सुशान्त की बात सुनकर हम दोनों ताज्जुब मे पड गए। पाखी और मैं एकसाथ बोले उठे—ऐसी भी क्या बात है कि इसी वक्त जाना पड़ेगा?

सुशान्त बोला—बहुत जरूरी काम है, जाना ही पड़ेगा!

मैंने पूछा—कितनी देर मे लौटोगे?

—बस, आधे घण्टे में!

इतना कहकर सुशान्त चला गया। मैं कर ही क्या सकता था। बैठा रहा।

पाखी तब तक खा ही रही थी। बोली—ऐसे ही हैं आपके दोस्त! पता नहीं कब तक वापस आएंगे?

—शायद कोई जरूरी काम है।

पाखी बोली—हजार काम हो, जब हम यहां आए ही हैं तब यह भी तो एक काम ही है!

—लेखक है न। भूल जाता होगा।

पाखी इस समय पुडिंग खा रही थी। बोली—आप भी लिखते हैं क्या?

—नही, मैं तो उसके साथ स्कूल में पढ़ता था। मैं उसकी तरह लिख नही सकता।

पाखी बोली—लिखकर क्या होता है? कोई पढता भी है!

मैंने आश्चर्य से पूछा—क्यों आपने कोई उपन्यास नही पढ़ा है। शरत्चन्द्र की किताबें भी नही?

—पढ़ने की कोशिश तो की थी। लेकिन अच्छा नही लगा। मुझे तो बस सिनेमा देखना अच्छा लगता है। बार-बार ऐसा लगता है कि अगर सिनेमा मे ऐक्टिंग करने का कोई मौका हाथ लग जाता तो अच्छा होता। अच्छा, आपका किसी सिनेमा-डायरेक्टर से परिचय है?

—नहीं।

—सुशान्त जी के साथ कई निर्देशकों का परिचय है। एक दिन वह मुझे स्टूडियो भी ले गए थे। कह रहे थे कि सिनेमा के लिए एक क़हानी भी लिखेंगे।

मैंने कहा—देखिए, यह सब अच्छा नहीं है। सिनेमा की लाइन में किसीका चरित्र ठीक नहीं रहता।

पाखी बोली—लेकिन रुपया ? सिनेमा में काम करके लोग कितना रुपया कमा लेते हैं। कितना नाम होता है। फोटो छपती है। मकान, गाड़ी सब कुछ तो मिलता है सिनेमा की बदौलत !

—लेकिन आपकी मां राज़ी होंगी ?

पाखी बोली—रुपये से क्या नहीं होता ? मैं और ज़्यादा कमाने लगूंगी तो मां को भी फायदा ही फायदा है। मेरे पैसों से मां को भी आराम मिलेगा।

—इस मामले में सुशान्त की क्या राय है ?

—उन्हें राय देने में कौन-सी हिचक है ! आजकल कितनी लड़कियां बैंक और पोस्ट-आफिस में नौकरी कर रही हैं। सिनेमा में ही काम करना केवल पाप है क्या ?

—सिनेमा की नौकरी और दूसरी नौकरी एक किस्म की तो नहीं है, मैंने थोड़े दबे स्वर में कहा।

पाखी बोली—आफिस की नौकरी में रखा ही क्या है। महीने के अन्त में वही सौ-डेढ़ सौ या उससे थोड़ा-सा ज़्यादा। उधर सिनेमा की नौकरी में हज़ार-हज़ार रुपये मिलते हैं। सिनेमा यदि खराब है तो सिनेमा ऐक्ट्रेसों की फोटो अखबारों और पत्रिकाओं में इतनी छपती क्यों हैं ? उन्हें पद्मश्री की उपाधि क्यों दी जाती है।

मैं इसका क्या उत्तर दे सकता था। चुप ही रहा। मैं कहना तो बहुत कुछ चाहता था, लेकिन कह नहीं सका। सिनेमा में जो मंज़िल पर पहुंचे हैं, पाखी उन्हींकी बात जानती है। लेकिन इनके अलावा कितने लोग इसमें डूब गए हैं, इसका हिसाब पाखी के पास नहीं है।

और केवल पाखी ही क्यों ? जीवन-संग्राम में हारे हुए व्यक्ति को याद ही कौन रखता है, किसके पास इतना फालतू वक्त है ?

बेयरा खाली प्लेटें उठाकर ले गया। जाते समय पूछा—काफी ले आऊं ?

पाखी बोली—हां।

मैंने कहा—एक ही कप लाना। मैं नहीं लूंगा।

मैंने घड़ी की तरफ नजर दौड़ाई। सुशान्त के जाने के बाद करीब डेढ़ घण्टा बीत गया। साढ़े आठ बजने को थे। आधे घण्टे में लौट आऊंगा, कहकर वह गया था। सुशान्त किस झंझट में मुझे फंसा गया!

काफी आ गई थी। पाखी गरम काफी की चुस्कियां भर रही थी। मैं एकटक पाखी को देख रहा था—यह लड़की सुशान्त का इतना रुपया खा गई है! मुझे बड़ा बुरा लग रहा था। सुशान्त कोई धनी आदमी तो है नहीं। किराये की कुछ आमदनी और थोड़ा-बहुत लिखकर कमा लेता होगा। उसके बल पर पाखी जैसी हथिनी को पालने का शौक उसे कैसे हुआ!

यह लड़की तो सुशान्त को बिलकुल खा जाएगी।

बेयरे ने फिर आकर पूछा—और कुछ लेंगे?

मैंने पाखी से कहा—कुछ और लेंगी क्या?

पता नहीं क्यों पाखी बेयरे से पूछने लगी—और क्या-क्या है?

बेयरा एक लम्बी लिस्ट सुनाता चला गया। डेविल, एग-करी, मटन, दोप्याजा, फिश फाई आदि-आदि।

मेरा दिल कांप रहा था। सोचा—पाखी और खाएगी क्या? रुपये तो सुशान्त को ही देने पड़ेंगे।

पर अगर उसके पास इतने रुपये न रहे तो…?

पाखी बोली—देखिएगा! सिनेमा में यदि मौका मिला तो मैं रातोंरात नाम कमा लूंगी। सिनेमा मैं खूब देखती हूं। पर अभिनय किसीका पसन्द ही नहीं आता। इच्छा होती है अभिनय करके सब को दिखा दूं!

मैंने कहा—इस सम्बन्ध में मेरा ज्ञान बहुत ही सीमित है।

पाखी अचरज के साथ बोली—ऐसा क्यों? सिनेमा के विषय में आप कुछ नहीं जानते। तब तो आप किसी आदमी का खून भी कर सकते हैं!

मैंने कहा—जिस चीज का मुझे ज्ञान ही नहीं, उसके बारे में मैं कैसे बोल सकता हूं!

पाखी बोली—इस युग में सिनेमा से सम्बन्धित कुछ नहीं जानना अपराध

—सुशान्त जी के साथ कई निर्देशकों का परिचय है। एक दिन वह मुझे स्टूडियो भी ले गए थे। कह रहे थे कि सिनेमा के लिए एक क़हानी भी लिखेंगे।

मैंने कहा—देखिए, यह सब अच्छा नहीं है। सिनेमा की लाइन में किसीका चरित्र ठीक नहीं रहता।

पाखी बोली—लेकिन रुपया? सिनेमा में काम करके लोग कितना रुपया कमा लेते हैं। कितना नाम होता है। फोटो छपती है। मकान, गाड़ी सब कुछ तो मिलता है सिनेमा की बदौलत!

—लेकिन आपकी मां राज़ी होंगी?

पाखी बोली—रुपये से क्या नहीं होता? मैं और ज़्यादा कमाने लगूंगी तो मां को भी फायदा ही फायदा है। मेरे पैसों से मां को भी आराम मिलेगा।

—इस मामले में सुशान्त की क्या राय है?

—उन्हें राय देने में कौन-सी हिचक है! आजकल कितनी लड़कियां बैंक और पोस्ट-आफिस में नौकरी कर रही हैं। सिनेमा में ही काम करना केवल पाप है क्या?

—सिनेमा की नौकरी और दूसरी नौकरी एक किस्म की तो नहीं है, मैंने थोड़े दबे स्वर में कहा।

पाखी बोली—आफिस की नौकरी में रखा ही क्या है। महीने के अन्त में वही सौ-डेढ़ सौ या उससे थोड़ा-सा ज़्यादा। उधर सिनेमा की नौकरी में हज़ार-हज़ार रुपये मिलते हैं। सिनेमा यदि खराब है तो सिनेमा ऐक्ट्रेसों की फोटो अख-बारों और पत्रिकाओं में इतनी छपती क्यों हैं? उन्हें पद्मश्री की उपाधि क्यों दी जाती है।

मैं इसका क्या उत्तर दे सकता था। चुप ही रहा। मैं कहना तो बहुत कुछ चाहता था, लेकिन कह नहीं सका। सिनेमा में जो मंज़िल पर पहुंचे हैं, पाख़ी उन्हींकी बात जानती है। लेकिन इनके अलावा कितने लोग इसमें डूब गए हैं, इसका हिसाब पाखी के पास नहीं है।

और केवल पाखी ही क्यों? जीवन-संग्राम में हारे हुए व्यक्ति को याद ही कौन रखता है, किसके पास इतना फालतू वक्त है?

बेयरा खाली प्लेटें उठाकर ले गया। जाते समय पूछा—काफी ले आऊं?

पाखी बोली—हां।

मैंने कहा—एक ही कप लाना। मैं नहीं लूंगा।

मैंने घड़ी की तरफ नजर दौड़ाई। सुशान्त के जाने के बाद करीब डेढ़ घण्टा बीत गया। साढ़े आठ बजने को थे। आधे घण्टे में लौट आऊंगा, कहकर वह गया था। सुशान्त किस झंझट में मुझे फसा गया!

काफी आ गई थी। पाखी गरम काफी की चुस्कियां भर रही थी। मैं एकटक पाखी को देख रहा था—यह लड़की सुशान्त का इतना रुपया खा गई है! मुझे बड़ा बुरा लग रहा था। सुशान्त कोई धनी आदमी तो है नहीं। किराये की कुछ आमदनी और थोड़ा-बहुत लिखकर कमा लेता होगा। उसके बल पर पाखी जैसी हथिनी को पालने का शौक उसे कैसे हुआ!

यह लड़की तो सुशान्त को बिल्कुल खा जाएगी।

बेयरे ने फिर आकर पूछा—और कुछ लेंगे?

मैंने पाखी से कहा—कुछ और लेंगी क्या?

पता नहीं क्यों पाखी बेयरे से पूछने लगी—और क्या-क्या है?

बेयरा एक लम्बी लिस्ट सुनाता चला गया। डेविल, एग-करी, मटन, दो-प्याज़ा, फिश फ्राई आदि-आदि।

मेरा दिल कांप रहा था। सोचा—पाखी और खाएगी क्या? रुपये तो सुशान्त को ही देने पड़ेंगे।

पर अगर उसके पास इतने रुपये न रहे तो···?

पाखी बोली—देखिएगा! सिनेमा में यदि मौका मिला तो मैं रातोंरात नाम कमा लूंगी। सिनेमा मैं खूब देखती हूं। पर अभिनय किसीका पसन्द ही नहीं आता। इच्छा होती है अभिनय करके सब को दिखा दूं!

मैंने कहा—इस सम्बन्ध में मेरा ज्ञान बहुत ही सीमित है।

पाखी अचरज के साथ बोली—ऐसा क्यों? सिनेमा के विषय में आप कुछ नहीं जानते। तब तो आप किसी आदमी का खून भी कर सकते हैं!

मैंने कहा—जिस चीज का मुझे ज्ञान ही नहीं, उसके बारे में मैं कैसे बोल सकता हूं!

पाखी बोली—इस युग में सिनेमा से सम्बन्धित कुछ नहीं जानना अपराध

है। इस दुनिया में रहकर जो सिनेमा नहीं देखता, नहीं समझना चाहता, उसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए। सिनेमा एक कला है। इतनी बड़ी कला के प्रति कोई कैसे उदासीन रह सकता है? कहानी और उपन्यास लिखने वाले लेखक को मिलता ही क्या है?

मुझसे रहा नहीं गया। कहा—रुपये से किसी लेखक को मत आंकिए।

पाखी बोली—मूल्यांकन तो रुपये से ही किया जा सकता है। यहां बैठकर आज जो कुछ खाया यह भी तो रुपये के बल पर ही! रुपये के बिना जीवन अधूरा है। गरीब मां-बाप अपने बच्चों से भी चिढ़ते हैं। प्यार, दया, ममता—उपन्यास या कहानी में जो कुछ लिखा जाता है वह तो वजनहीन शब्दों का भण्डार मात्र है।

मैं बोला—लेकिन मैं तो अभी तक लेखक बन ही नहीं सका हूं।

—नहीं, मैं आपको नहीं कह रही हूं! आपके दोस्त सुशान्त के लिए कह रही हूं। जितने भी बड़े लेखक आज तक हुए हैं चाहे वह बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र या रवीन्द्रनाथ ही क्यों न हों···सब झूठ बोल गए हैं। असल बात किसीने भी नहीं कही।

—असल बात आप किसे मानती हैं?

—क्यों? रुपया! कैसे कोई रुपया कमा सकता है कैसे उसे खर्च किया जा सकता है। और रुपये के बिना सब कुछ व्यर्थ है, यह बात किसीने नहीं लिखी।

फिर भी मैंने कहा—रुपये से सब खरीदा नहीं जा सकता। इस छोटी-सी बात में आपका कोई विश्वास नहीं?

पाखी मेरी बात का जवाब न देकर बोली—मान लीजिए, आज जो कुछ खाया है, इसका दाम न दूं तो क्या ये लोग हमें छोड़ देंगे? एक-एक पैसा वसूल करके ही हमें जाने देंगे!

मैंने कहा—लेकिन···प्रेम?

पाखी बोली—आप हमें ज्यादा रुपया दीजिए, मैं सुशान्त को छोड़कर आपसे प्रेम करूंगी।

मैं तर्क करता ही रहा—मान लीजिए, एक करोड़पति आदमी है, लेकिन है वह कोढ़ी, आवारा और बदचलन। यदि वह आपसे शादी करना चाहे तो आप राजी होंगी?

पाखी बोली—कोढ़ी तो खैर दूर की बात है। पर एक करोड़ रुपये के

बदले में किसीसे भी शादी कर सकती हूं।

मैं विमूढ़ हो गया। एक शब्द भी मुंह से नहीं निकला। बहुत देर तक मौन ही बैठा रहा। लग रहा था कि किसी जहरीले सांप के साथ मैं एक कमरे में बन्द हूं। सोच रहा था—आगे चलकर यदि कभी कोई उपन्यास लिखा तो ऐसी पाखी को लेकर ही लिखूंगा, जो रुपये के लिए किसी भी प्रकार की हीनता को स्वीकार कर सकती है। सोचा था यदि उपन्यास लिखने की क्षमता हुई तो भविष्य में उस समाज के विरुद्ध लिखूंगा, जिस समाज में पाखी की तरह की लड़कियां रहती हैं।

पाखी बोल रही थी—सुशान्त को अक्सर मैं कहा करती हूं कि वह फालतू कहानियां लिखना छोड़ दे, क्या फायदा है ? हां, सिनेमा के लिए कहानी लिखना ठीक है, क्योंकि उसमें पैसे ज्यादा मिलते हैं। कहानी लिखने पर तो बीस या पचास···लेकिन सिनेमा की कहानी पर कम से कम भी दो हजार रुपये तो मिलेंगे ही। अब क्या अच्छा है और क्या बुरा, आप ही सोचिए !

मैंने पूछा—सुशान्त क्या कहता है ?

पाखी बोली—सुशान्त मेरी बात मानते ही नहीं। इनपर तो एक ही धुन सवार है कि वह साहित्यिक बनेंगे। मैं बोलूं भी तो क्या ? जो अपनी भलाई स्वयं नहीं समझता, उसे समझाना भी मुश्किल ही है। मैं तो उन्हें अक्सर कहा करती हूं कि ऐसी कोई कहानी लिखिए, जिसकी नायिका मैं बनूं और उन्हें भी यश मिले, पैसा मिले, गाड़ी हो, मकान हो, लेकिन उनके कान पर तो जूं भी नहीं रेंगती। सुशान्त तो केवल आलतू-फालतू ही लिखते रहते हैं। कहते हैं—एक लेखक अपने लेख के जरिये तीन-चार सौ साल जीता है। लेकिन एक फिल्म-स्टार का जीवन दस साल में ही खत्म हो जाता है। मैं सुनकर हंस देती हूं···

मुझे अचानक ख्याल आया, सुशान्त तो अभी तक लौटा नहीं। आधे घण्टे में लौट आऊंगा, कहकर गया था; लेकिन अभी तक आया नहीं। मेरा दिल कांप गया। यदि सुशान्त न आया तो ? मैं किस झंझट में आ फंसा, यह सोचकर भी डर लग रहा था।

बेयरा बिल दे गया।

बिल साढ़े तेरह रुपये का था।

मैं ठगा-सा रह गया। पाखी की ओर देखा, भोजन की तृप्ति से वह श्लथ थी। मुझे अब क्या करना चाहिए, समझ में नहीं आ रहा था। शरीर का सारा खून मानो सर पर चढ़ गया। सुशान्त यदि सामने रहता तो मैं शायद उसका खून कर देता। लेकिन गुस्से को पीना पड़ रहा था। गुस्से को उतारता भी तो किस पर! एक बार मन में आया कि पाखी को इस हालत में अकेला छोड़, भाग जाऊं। मेरा कोई दायित्व नहीं। पाखी दिक्कत में पड़े या होटल वाले उसे पुलिस के हवाले करें, मेरा क्या? कौन, कहां की पाखी? मधु गुप्ता लेन की एक अज्ञात लड़की! उसके मान-सम्मान की रक्षा करने का भार मैं क्यों उठाऊं? सुशांत की चाहे वह जो भी लगती हो, मेरी तो वह कोई नहीं। मेरा उससे कोई मतलब नहीं!

याद आता है, उस दिन मानसिक तनाव से मैं जैसा ग्रस्त हुआ था वैसा कभी नहीं हुआ। मेरे पास कुल सात रुपये थे, बिल साढ़े तेरह रुपयों का था, बाकी रुपये मैं कहां से लाता! होटल का मालिक मुझे नहीं जानता, पाखी को नहीं पहचानता, पैसे बाकी भी क्यों रखेगा?

पाखी अचानक पूछ बैठी—आप सुशान्त के लिए सोच रहे हैं क्या?

—नहीं, ऐसी बात नहीं लेकिन···

पाखी बोली—हमें लगता है सुशान्त जरूर किसी काम में अटक गए हैं। गप्पी आदमी है। हो सकता है गप-शप में हम लोगों की बात ही भूल गए हों।

मैंने कहा—लेकिन, वह तो आधे घण्टे के लिए कहकर गया था।

पाखी बोली—यही तो उनमें ऐब है। आंखों से ओझल होते ही पिछला सब कुछ भूल जाते हैं। जहां बैठेंगे, वहीं जमे रहेंगे!

मैंने कहा—लेकिन इतना दायित्व का बोध तो उसे होना ही चाहिए। हम लोगों को यहां बैठाकर वह चला गया और सच्ची बात तो यह है कि आप भी मुझे ठीक तरह से नहीं जानतीं।

पाखी बोली—इसमें क्या? अब तो जान-पहचान हो ही गई है। अब से कभी-कभी हमारे घर आइएगा। इसी तरह सुशान्त से भी दोस्ती हुई थी।

—आपके पास कुछ रुपये हैं क्या? मैं बिना पूछे नहीं रह सका।

पाखी चौंकी—रुपया? क्यों?

मैंने कहा—बिल साढ़े तेरह रुपयों का है, लेकिन मेरे पास सात ही रुपये हैं।

साढ़े छह रुपये कम पड़ रहे हैं।

पाली बोली—अब क्या कीजिएगा ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है !

मैंने कहा—ये लोग हमें जानते भी नहीं। बाकी तो नहीं हो सकेगे।

पाली निर्विकार-सी कुछ सोचने लगी। मुझे लगा, मेरी बातों का उस पर कोई असर नहीं हुआ।

मैं थोड़ा उत्तेजित होकर बोला—कुछ उपाय भी बताइए, अब मैं क्या करूं !

पाली उतनी ही उदासीनता से बोली—थोड़ी देर और बैठ जाइए। हो सकता है सुशान्त लौट आए।

—आना होता तो अब तक आ ही जाता, अब वह नहीं आएगा।

पाली बोली—फिर चलिए, घर चलते हैं।

मैंने कहा—इन लोगों को क्या जवाब दूंगा !

पाली बोली—उधार रहने दीजिए। रुपया न होने पर और कर भी क्या सकते हैं ?

पाली को क्या, पाली तो कुछ भी बोल सकती है, लेकिन मेरे दिमाग में हजारों कांटे चुभ रहे थे। मैं पुरुष हूं। लोग मुझे ही पकड़ेंगे। पाली तो औरत है, समाज की आंखों में औरत हमेशा बेकसूर होती है।

मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और बोला—चलिए, चलते हैं। जो होगा, देखा जाएगा !

केबिन का पर्दा हटाकर मैं बाहर निकला। पाली भी मेरे पीछे निकल आई।

होटल का मालिक दरवाजे के पास ही बैठा था। मैंने उसके पास आकर अपनी असमर्थता समझाई और कहा—सुशान्त हम लोगों को बैठाकर किसी जरूरी काम में निकल गया, रुपये-पैसे सब उसी के पास हैं। अन्त में विनीत भाव से यह भी बताया—मेरे पास कुल साढ़े ही रुपये हैं। आगे आपकी कृपा पर अपने को समर्पित कर रहा हूं।

होटल-मालिक कोई सज्जन ही व्यक्ति था। मन लगाकर मेरी बातों को सुनता रहा। उसके बाद बोला—मैंने भंडारे के लिए यह होटल नहीं खोला है, यह मेरा व्यवसाय है। जब रुपया नहीं था, तब इतना खाया क्यों ? बिना पैसा

मैं ठगा-सा रह गया। पाखी की ओर देखा, भोजन की तृप्ति से वह श्लथ थी। मुझे अब क्या करना चाहिए, समझ में नहीं आ रहा था। शरीर का सारा खून मानो सर पर चढ़ गया। सुशान्त यदि सामने रहता तो मैं शायद उसका खून कर देता। लेकिन गुस्से को पीना पड़ रहा था। गुस्से को उतारता भी तो किस पर ! एक बार मन में आया कि पाखी को इस हालत में अकेला छोड़, भाग जाऊं। मेरा कोई दायित्व नहीं। पाखी दिक्कत में पड़े या होटल वाले उसे पुलिस के हवाले करें, मेरा क्या ? कौन, कहां की पाखी ? मधु गुप्ता लेन की एक अज्ञात लड़की ! उसके मान-सम्मान की रक्षा करने का भार मैं क्यों उठाऊं ? सुशांत की चाहे वह जो भी लगती हो, मेरी तो वह कोई नहीं। मेरा उससे कोई मतलब नहीं !

याद आता है, उस दिन मानसिक तनाव से मैं जैसा ग्रस्त हुआ था वैसा कभी नहीं हुआ। मेरे पास कुल सात रुपये थे, बिल साढ़े तेरह रुपयों का था, बाकी रुपये मैं कहां से लाता ! होटल का मालिक मुझे नहीं जानता, पाखी को नहीं पहचानता, पैसे बाकी भी क्यों रखेगा ?

पाखी अचानक पूछ बैठी—आप सुशान्त के लिए सोच रहे हैं क्या ?

—नहीं, ऐसी बात नहीं लेकिन···

पाखी बोली—हमें लगता है सुशान्त जरूर किसी काम में अटक गए हैं। गप्पी आदमी है। हो सकता है गप-शप में हम लोगों की बात ही भूल गए हों।

मैंने कहा—लेकिन, वह तो आधे घण्टे के लिए कहकर गया था।

पाखी बोली—यही तो उनमें ऐब है। आंखों से ओझल होते ही पिछला सब कुछ भूल जाते हैं। जहां बैठेंगे, वहीं जमे रहेंगे !

मैंने कहा—लेकिन इतना दायित्व का बोध तो उसे होना ही चाहिए। हम लोगों को यहां बैठाकर वह चला गया और सच्ची बात तो यह है कि आप भी मुझे ठीक तरह से नहीं जानतीं।

पाखी बोली—इसमें क्या ? अब तो जान-पहचान हो ही गई है। अब से कभी-कभी हमारे घर आइएगा। इसी तरह सुशान्त से भी दोस्ती हुई थी।

—आपके पास कुछ रुपये हैं क्या ? मैं बिना पूछे नहीं रह सका।

पाखी चौंकी—रुपया ? क्यों ?

मैंने कहा—बिल साढ़े तेरह रुपयों का है, लेकिन मेरे पास सात ही रुपये हैं।

साढ़े छह रुपये कम पड़ रहे हैं।

पाखी बोली—अब क्या कीजिएगा ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है !

मैंने कहा—ये लोग हमें जानते भी नहीं। बाकी तो नहीं ही रखेंगे।

पाखी निर्विकार-सी कुछ सोचने लगी। मुझे लगा, मेरी बातों का उस पर कोई असर नहीं हुआ।

मैं थोड़ा उत्तेजित होकर बोला—कुछ उपाय भी बताइए, अब मैं क्या करूं !

पाखी उतनी ही उदासीनता से बोली—थोड़ी देर और बैठ जाइए। हो सकता है सुशान्त लौट आएं।

— आना होता तो अब तक आ ही जाता, अब वह नहीं आएगा।

पाखी बोली—फिर चलिए, घर चलते हैं।

मैंने कहा—इन लोगों को क्या जवाब दूंगा !

पाखी बोली—उधार रहने दीजिए। रुपया न होने पर और कर भी क्या सकते हैं ?

पाखी को क्या, पाखी तो कुछ भी बोल सकती है, लेकिन मेरे दिमाग में हज़ारों कांटे चुभ रहे थे। मैं पुरुष हूं। लोग मुझे ही पकड़ेंगे। पाखी तो औरत है, समाज की आंखों में औरत हमेशा बेकसूर होती है।

मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और बोला—चलिए, चलते हैं। जो होगा, देखा जाएगा !

केबिन का पर्दा हटाकर मैं बाहर निकला। पाखी भी मेरे पीछे निकल आई।

होटल का मालिक दरवाज़े के पास ही बैठा था। मैंने उसके पास जाकर अपनी असमर्थता समझाई और कहा—सुशान्त हम लोगों को बैठाकर किसी ज़रूरी काम में निकल गया, रुपये-पैसे सब उसीके पास हैं। अन्त में विनीत भाव से यह भी बताया—मेरे पास कुल सात ही रुपये हैं। आगे आपकी कृपा पर अपने को समर्पित कर रहा हूं।

होटल-मालिक कोई सज्जन ही व्यक्ति था। मन लगाकर मेरी बातों को सुनता रहा। उसके बाद बोला—मैंने भंडारे के लिए यह होटल नहीं खोला है, यह मेरा व्यवसाय है। जब रुपया नहीं था, तब इतना खाया क्यों ? बिना पैसा

रखे भला बाज़ार में कोई खाता है ? सवा रुपये किलो आलू है, डेढ़ रुपये किलो बैंगन है। जिस अरबी को कोई सब्ज़ी नहीं मानता, वह भी एक रुपये किलो है। इस महंगाई में आप कहना क्या चाहते हैं ? अपने पसीने की कमाई मुफ्त में लुटाऊं ? आप मेरे दामाद हैं ? या गोद लिए पुत्र ? रुपये हों तो चुपचाप दे दीजिए, वरना पुलिस को खबर कर रहा हूं।

मैंने कहा—फिज़ूल की बातें करने की मेरी आदत नहीं है। मैं अच्छे घर का लड़का हूं। विपत्ति में आपका सहारा मांग रहा हूं। सात रुपये आप रख लीजिए, बाकी के पैसे मैं सुबह आकर दे जाऊंगा।

उसने कहा—देखिए, अच्छे घर के बहुत से लड़के-लड़कियों को मैं देख चुका हूं। जिस दिन से मैंने सड़क के किनारे यह होटल खोला है उसीदिन से अच्छे घरों की औलादों को देख रहा हूं। अच्छा घर किसे कहते हैं जी ? माथे पर लिखा रहता है ? व्यवहार ही प्रमाण देता है कि कौन अच्छा है, कौन बुरा ! फिर थोड़ी देर रुककर बोला—देखिए उधर देखिए···

उसके कहने के मुताबिक मैंने दीवाल की तरफ ताका। उल्लेखनीय कोई चीज़ दिखाई नहीं पड़ी। पुरानी दीवाल, सफेदी उतरी हुई। दीवाल से सटी हुई एक आलमारी। आलमारी की ऊंचाई जहां खत्म हुई थी, वहां कुछ अधनंगी औरतों की तस्वीरें थीं और उसके बगल में ही मढ़ी हुई एक विज्ञप्ति टंगी थी, जिसमें लाल और नीले अक्षरों में लिखा था—'आज नगद कल उधार'—देख रहे हैं न ?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। चुप बना रहा।

उसने अपना कहना जारी रखा—आप जैसे सज्जनों से तंग आकर ही नगद साढ़े चार रुपये खर्च करके मैंने इसे टांगा है।

उसकी ऊंची आवाज़ के आकर्षण से हम लोगों के इर्द-गिर्द कुछ लोगों की भीड़ भी इकट्ठी हो गई थी। सभी लोगों के चेहरों पर कुतूहल था। खास करके मेरे साथ एक महिला को देखकर लोगों की उत्सुकता और भी बढ़ गई थी।

किसीने तो कह भी दिया—गलती तो आपकी है। होटल वाले का टोकना बिल्कुल वाजिब है। महिला को साथ लेकर खाने को आए हैं और पाकेट खाली ? आपकी हिम्मत की दाद देता हूं। औरत बाहर थोड़ा ज़्यादा खाती ही है, यह आपको पता नहीं था ? दूसरी तरफ से किसीने छेड़ा—नहीं जी, किसी भी

हालत में इन लोगों को नहीं छोड़ना चाहिए, लड़की लेकर मस्ती लूटने के लिए आने पर हिसाब ऐसे ही गड़बड़ाता है। पैसे वसूल करके ही छोड़िए !

तीसरी तरफ से भी टीका-टिप्पणी हुई—गहने भी तो है उसके पास, रुपये नहीं तो एक चूड़ी ही उतार लो !

पाखी अब तक चुप थी ! अब तुनक उठी—यह सोने की चूड़ी नहीं है, नकली है, विश्वास कीजिए। कहते-कहते उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े।

मैंने पाखी को चुप कराया और होटल-मालिक से कहा—आप मेरी यह अंगूठी रख लीजिए, कल सुबह साढ़े तेरह रुपये देकर अंगूठी वापस ले जाऊंगा। होटल-मालिक बड़े अचरज के साथ मुझे घूर रहा था। मैंने फिर कहा—आप बिलकुल चिन्ता मत कीजिए, यह खाटी सोने की अंगूठी है और मेरे पिताजी के हाथ की है। आप बेहिचक इसे रख सकते हैं। पक्का सोना है, आप किसीसे जंचवा लें। मैं तब तक बैठता हूं। होटल-मालिक थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा। फिर बोला—नहीं जी, मैं पैसे के लिए अब उतना नहीं सोच रहा हूं। मुझे तो आपकी चिन्ता है। आपने तो कुछ खाया नहीं, लेकिन साढ़े तेरह रुपये का दंड लग गया।

मैंने उसे टोकते हुए कहा—बात चाहे जो कुछ भी हो, इस अंगूठी की कीमत कुछ न सही, पचास-साठ रुपये तो है ही।

उसने अंगूठी रख ली।

मैं पाखी को लेकर सड़क पर उतर आया। लेकिन पीछे से किसीने आवाज दी—जरा सुनिएगा !

मैंने पीछे मुड़कर देखा। बुलाने वाला होटल-मालिक ही था ! पास पहुंचते ही धीरे से बोला—किस फेर में पड़े है ? आप पढ़े-लिखे तो दीखते हैं !

मैंने पूछा—क्यों ?

उसने कहा—बुरा मत मानिएगा। आपकी भलाई के लिए कह रहा हूं। आप ऐसी-वैसी लड़कियों को लेकर क्यों घूमते है ?

मैंने कहा—ऐसी-वैसी लड़की है, आपको क्या पता ?

होटल-मालिक ने कहा—मैं इसे पहचानता हूं। मेरी दुकान में यह अक्सर आया करती है। साढ़े तेरह रुपये में ही आपको छुटकारा मिल गया, यह आपका सौभाग्य है। लेकिन अब तो आपको इसे टैक्सी से घर पहुंचाना पड़ेगा।

मैंने कहा—मेरे पास तो वही सात रुपए बचे हैं, जो आपको दे रहा था।

—जिस लड़की के फेर में आप पड़े हैं, उसके लिए सात रुपये थोड़े हैं। आप मेरी तरफ से ये दस रुपये रख लीजिए, लेकिन कल सुबह निश्चित रूप से साढ़े तेईस रुपये देकर अंगूठी ले जाइएगा।

मैं करता भी क्या, अपमान के इस कड़वे घूंट को पीकर बाहर चला आया और पाखी से कहा—चलो!

चलते-चलते पाखी ने पूछा—वह होटलवाला आपसे क्या कह रहा था?

मैं प्रश्न को टाल गया और बोला—चलो, बस-स्टाप पर चलकर खड़े होते हैं।

पाखी बोली—बहुत खाया है। बस में चढ़ने का मन नहीं है। एक टैक्सी क्यों नहीं ले लेते?

ये सारी बहुत पुरानी बातें हैं। उस समय तक सुशान्त उतना विख्यात नहीं था। बस एकाध रचना पत्र-पत्रिका में छप जाती थी। कई जगह से लेख के लिए मांग भी आती थी। घर बैठे ही वह एक उपन्यास भी लिख रहा था। उपन्यास का नाम था—'पीला पुष्प'। बाद में इस किताब की बड़ी प्रशंसा हुई थी। बड़ी बिकी भी थी। लेकिन सुशान्त को मैं लेखक के रूप में नहीं, लेखक बनने के पहले से जानता था। सुशान्त कब लिखता था, कहां बैठकर लिखता था, क्या लिखता था—मुझे सब मालूम था। कई बार उसके घर जाने पर उसकी मां दुख से कहा करती थी—देखो बेटा, मैं चिन्ता से पागल हो रही हूं। आज तीन दिन से सुशान्त घर नहीं लौटा।

मैं उन्हें सान्त्वना देकर समझाता—माता जी, आप मत घबराइए! वह ज़रूर लौटेगा। कहीं किसीके घर बैठकर लिखता होगा और जब वह एक बार लिखने बैठता है, तब उसे किसीकी सुध नहीं रहती।

उसकी मां आक्षेप करती ही रहती—वह घर बैठकर भी तो लिख सकता है। अपना घर है, यहां किस बात की दिक्कत है? जो लिखते हैं क्या वे सभी पराये घरों में बैठकर लिखते हैं? और जिनके घर बैठकर वह लिखता है वे भी कैसे आदमी हैं? मैं उसकी मां हूं। यहां चिन्ता से परेशान हूं। उन्हें खुद ही

समझना चाहिए और सुशान्त को समझा-बुझाकर घर भेज देना चाहिए। यदि इतना भी न करें तो किसीके द्वारा कोई खबर तो भेजनी ही चाहिए।

आज मुझे याद आता है, जिस दिन उस छोकरी पाखी को टैक्सी में बैठाकर मैं उसे मधु गुप्ता लेन छोड़ने गया था, उसके बाद से बहुत दिनों तक सुशान्त से मेरी कोई भेंट ही नहीं हुई। मेरी परीक्षा चल रही थी। एक दिन परीक्षा देकर मैं घर लौट रहा था कि अचानक सुशान्त से भेंट हो गई।

मैंने बहुत दिनों बाद उसे देखा था। चेहरा निखर आया था और शरीर भी स्वस्थ था। वह एक लम्बा कुरता पहने था। मुझे देखकर बड़ी ही मीठी मुस्कान के साथ पूछा—क्यों रे, आजकल तू कहां रहता है? भेंट ही नहीं होती!

मैंने कहा—कालेज की पढ़ाई में उलझा हुआ था और अब परीक्षा चल रही है।

सुशान्त ने मुझसे पूछा—इधर तूने क्या लिखा है?

इस बात का जवाब न देकर मैंने उससे पूछा—तेरे घर जाकर कई बार लौट आया हूं। आजकल तू घर पर नहीं जाता?

सुशान्त बोला—मेरे रहने का भी क्या कोई ठिकाना है? जब जहां रहता हूं, वहीं मेरा घर है।

मैंने पूछा—मधु गुप्ता लेन फिर गए थे क्या? मैं तो सोच रहा था, वहीं जाकर तेरा पता लगाऊं।

सुशान्त बोला—अरे धत्! उसी पाखी के लिए कह रहा है। मुझे फुरसत ही नहीं। कैसे जाऊं, लिखने का काम भी बहुत बढ़ गया है।

—लेकिन सुशान्त! उस दिन तू मुझे बिल्कुल फंसा कर भाग गया था। मेरे पास रुपये भी नहीं थे। तू 'आऊंगा' कहकर भाग गया और अन्त में मुझे अपनी अंगूठी गिरवी रखकर उस होटल से मुक्ति मिली।

सुशान्त ने अचरज के साथ पूछा—क्यों कितने रुपये का बिल था।

बिल तो साढ़े तेरह रुपये का था। लेकिन मेरे पास तो सात ही रुपये थे, पांच तेरे और दो मेरे।

सुशान्त बोला—तू बड़ा बेवकूफ निकला। कोई बहाना बनाकर क्यों नहीं खिसक गया।

मैंने आश्चर्य से पूछा—उस लड़की को अकेला छोड़कर कैसे भागता?

—मैं तो उसीके कारण भाग गया था !—मेरे बन्धु का उत्तर था।

सुशान्त की इस तरह की बातें मुझे अच्छी नहीं लगीं। इसीलिए मैंने कहा —हमारे प्रति उसके मन में क्या धारणा बनी, ज़रा सोचो तो !

सुशान्त बोला—अरे रहने भी दे यार ! कलकत्ता में ऐसे हज़ारों परिवार हैं और हमारी तरह हज़ारों ऐसे नवयुवक भी हैं। हमारे बिना ऐसे परिवारों को कोई असुविधा नहीं होती, क्योंकि उनके पीछे बहुत-से सुशान्त हैं। वे ही उनका उद्धार करते हैं !

बात पूरी तरह से मेरी समझ में नहीं आ रही थी। पूछा—तुझसे उसकी फिर मुलाकात हुई थी ?

सुशान्त बोला—दुर, किस दुख से भेंट करूं ? पैसे तो मैंने वसूल कर लिए !

—कैसे पैसे ?

—यही ! ऐसे परिवार को लेकर मेरा मन एक उपन्यास लिखने का था, वह उद्देश्य पूरा हो गया। उन लोगों को लेकर ही मैंने अपना नया उपन्यास 'पीला पुष्प' लिखा है। तुमने यह उपन्यास पढ़ा है ?

—नहीं तो !

सुशान्त बोला—जब 'पीला पुष्प' खिलता है तब तुम उस खेत की तरफ ताक भी नहीं सकते। बड़ा ही मर्मस्पर्शी होता है वह दृश्य।

—यह तो सभी फूलों के लिए कहा जा सकता है।

सुशान्त बोला—पीले फूल तो यत्न से उगाए हुए किसी गमले के फूल नहीं होते। वन, जंगलों या खेतों के फूल हैं। गमले का खिला हुआ फूल एक सूखता है एक खिलता है, लेकिन खेत के फूल झुण्ड के झुण्ड खिलते हैं और एक ही साथ मुरझा भी जाते हैं। इसी प्रकार एक तरह का पंछी भी होता है जो झुण्ड में ही जन्म लेता है और झुण्ड में ही मर भी जाता है। इसलिए मुरझाने के पहले मैंने उसे जी भरकर देख लिया। जो थोड़े-बहुत रुपये उन लोगों के ऊपर खर्च किए थे उससे हज़ार गुना ज्यादा वसूल कर के अब उन्हें पीछे छोड़ आया हूं।

वास्तव में दो साल बाद सुशान्त का लिखा नया उपन्यास 'पीला पुष्प' जब

किताब के रूप में बाजार में आया तब प्रतिदिन उसकी हजार प्रतियां बिकने लगी। चारों तरफ उसकी ख्याति फैल गई। सभा-समितियों से बुलाहट आने लगी। लोग कहते, शरत्चन्द्र के बाद सुशान्त ही एकमात्र प्रथम श्रेणी का लेखक है। दूसरी तरफ इस तरह की पुस्तक लिखने के कारण पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनाएं भी छपने लगीं।

जब उसकी ख्याति चरम सीमा पर थी, तब की बात है। अचानक ही सुशान्त एक दिन मेरे घर आया। मैं उसे देखकर अवाक् रह गया, पर मुझे खुशी भी हुई।

पूछा—क्यों रे, क्या हाल है?

सुशान्त बोला—शादी कर रहा हूं। अवश्य आना और उसने मुझे एक निमन्त्रण-पत्र दिया। मैंने देखा किसी एक फलाने बाबू की सप्तम कन्या कुमारी फलानी देवी के साथ उसका शुभ विवाह हो रहा था।

मैंने आश्चर्य से पूछा—कौन है यह लड़की?

सुशान्त ने बताया—बिल्कुल देसी लड़की है। शिक्षा-दीक्षा, पढ़ने-लिखने का झंझट ही नहीं। पूरी तरह से घरेलू लड़की है। न सिनेमा की शौकीन और न होटलों की। ऐसी लड़की सास की पूजा और पति-सेवा करेगी। मैंने बहुत सोचा ऐसी लड़की ही पत्नी बनाने के लायक है। प्रेम-वेम कुछ समझती ही नहीं। मोटे रूप में खाने-पहनने से ही सन्तुष्ट रहती है।

मैंने कहा—लेकिन तू ठहरा लेखक? ऐसी पत्नी क्या तेरी रचनाओं को समझेगी?

—अरे, यह सब झंझट तो उसमें है ही नहीं! जितना पढ़ेगी-समझेगी उतनी ही आफत है।

सुशान्त इतनी विचित्र बुद्धि का है, यह मैं नहीं जानता था। मैं तो समझ ही न सका कि वह ऐसी शादी क्यों कर रहा है। ऐसी पत्नी को लेकर क्या वह समाज में कहीं जा सकेगा! जो लड़की बिल्कुल ही अनपढ़-गंवार है उसका परिचय भी वह कैसे देगा? और चेहरा-मोहरा भी कतई सुन्दर नहीं था। शादी के दिन मैंने उसे कुतूहलवश देखा भी। बिल्कुल गंवार लग रही थी। बचपन से शायद झाड़ू देने एवं कपड़े धोने के अलावा और कुछ भी उसने नहीं किया, कम से कम चेहरा देखकर मुझे ऐसा ही लगा। लेकिन कुतूहल का निवारण कौन करता। इस लड़की

से आखिर सुशान्त ने विवाह क्यों किया ? क्या सुशान्त की यह अपनी पसन्द थी ? कौन जाने···

मन में उठे प्रश्न मन में ही रह गए। सोचा—सुशान्त ने जो कुछ किया अपनी समझ से ठीक ही किया होगा, मैं क्यों परेशान होऊं !

बहू-भात के दिन सुशान्त के सभी लेखक-मित्र, विभिन्न पत्रिकाओं के सम्पादक और कुछ भक्त पाठक भी शरीक हुए। विवाह और खान-पान की आखिरी रस्म पूरी होने तक मैं भी वहां रहा। उसके बाद बहुत दिनों तक सुशान्त की कोई खबर मुझे नहीं मिली। किसी अखबार में विज्ञापन देखा था कि सुशान्त का एक और नया उपन्यास निकल रहा है। 'पीला पुष्प' पढ़ने के बाद पाठक उसकी और रचनाएं पढ़ने को आतुर थे। मैं यह जानता था। मैं यह भी जानता था कि शादी के बाद सुशान्त अपनी पत्नी को लेकर उतना व्यस्त नहीं रहेगा, जितना अपनी रचनाओं को लेकर। इसीलिए मैंने उसके घर जाकर उसके लेखन-कार्य में बाधा नहीं डाली। लेकिन कभी-कभी घर लौटते समय सुशान्त की खबर लेने की कोशिश करता था। नई-नई शादी हुई थी, फिर भी शाम को उसे घर पर न रहते देखकर मुझे ताज्जुब होता। उसकी विधवा मां दुखी भाव से कहती—सुशान्त को लौटने में देर होगी बेटा !

—लेकिन सुशान्त तो अब शादी-शुदा गृहस्थ आदमी है, अब भी देर से लौटता है ? मैं पूछता।

उसकी मां बोलती—पता नहीं बेटा, वह कहां जाता है, क्या करता है। और क्या सोचता है, मेरी तो समझ में नहीं आता ! बहू भी नई है।

और कुछ पूछने की हिम्मत नहीं पड़ती। मैं मां को सान्त्वना देता—मुझसे बहुत दिनों से उसकी भेंट नहीं हुई है। इसीलिए आज मिलने के लिए आया था। सोचा, रात को तो मिल ही जाएगा।

—रात को लौट तो आता है, लेकिन कभी-कभी आधी रात को भी लौटता है।

—आप पूछतीं क्यों नहीं कि वह कहां जाता है, इतनी रात तक आखिर क्या करता है ?

—पूछा था बेटा, उसकी तो एक ही रट है। बहुत काम रहता है, उसीमें

व्यस्त रहता हूं। मैं नही जानती किस तरह का काम है। कौन-सा राज-काज वह सम्हालता है !

—आप अपनी बहू से पूछकर देखिए, शायद उन्हें कुछ पता हो ?

—बहू पूछेगी भला ! वह तो बेचारी बात करने में ही घबराती है।

—क्यो, किस बात का डर है उसे ?

—डरेगी नही ? उसके साथ बात करने में तो मुझे भी डर लगता है। उसके घर और बाहर के व्यवहार में कितना अन्तर है ! अब तो वह बड़ा हो चुका है। जब छोटा था, तब भी मैं उससे डरती थी।

—आप घबराइए नही मां जी। हो सकता है किसी काम या चिन्ता मे वह इस तरह उलझा हुआ हो कि आप लोगो से ठीक तरह से बातें नही कर पाता हो !

—चिन्ता कैसे न हो बेटा ? जब वह सात का था तब उसके पिता चल बसे। मैं अकेली विधवा ! मैंने कितने दुखों से उसे पाल-पोसकर बड़ा किया। लेकिन आज उसे इन बातों से क्या मतलब ?

—आप ऐसा मत कहिए, सुशान्त सब कुछ समझता है, अनुभव करता है, और लेखक होने के नाते शायद उसके दिमाग में यही बातें रहती हैं।

मां बोली—लिखकर होगा भी क्या ? एक नौकरी क्यो नही कर लेता। नौकरी करके भी तो लिखा जा सकता है। नौकरी करने पर लोग नियमपूर्वक रहते हैं। सुबह जाना और शाम को समय से लौट आना। फिर नाश्ता-पानी करके परिवार के बीच बैठकर थोड़ी बातचीत करना, यही तो गृहस्थी है। ससुराल और मैके में ऐसा ही देखती आई हू। दिन-रात घर के बाहर रहना क्या कोई अच्छी बात है ? वास्तव में लिखना-विखना पैसे वालो को ही शोभता है।

सुशान्त की मां लगातार आक्षेप किए जा रही थी, और मैं भी यथा-नियम उन्हें सात्वना दे रहा था। लेकिन सुशान्त के लिए मेरे मन मे कोई विरोध नही था। क्योकि मैं मानता था कि जो इस दुनिया मे लेखक बनने के लिए जन्म [illegible] है, वह कभी संसार के बंधे नियमो की राह पर नही चल सकता।

पर मैं तो किसी और बात को सोचकर अवाक् हो रहा था। सुशान्त [illegible] बुद्धिमान विवेचक व्यक्ति था। बहुत सोच-समझकर ही उसने [illegible]

चुनाव किया था। गलतफहमी की गुंजाइश नहीं थी। फिर वह ऐसा क्यों कर रहा था। लेकिन उसकी बातों को आखिर मैं कब तक सोच सकता! मैं अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुका था और एक नौकरी भी कर रहा था। मेरे व्यक्तिगत उत्तरदायित्व भी बढ़ गए थे। इसलिए सुशान्त के लिए कुछ सोचूं, इतना अवकाश भी मेरे पास नहीं था।

•

एक दिन उससे मिलने का मौका मुझे मिल ही गया। अखबार में देखा, खिदिरपुर में किसी सभा का सभापति बनकर वह आने वाला था। मैं भी पता ढूंढ़कर समय से पहुंच गया। सुशान्त की भक्तमण्डली उसके भाषण को सुनने के लिए बड़ी आतुरता के साथ बैठी थी। वह मुझे देख नहीं पाया था। मैं दूर बैठा उसका भाषण सुनता रहा। बहुत बड़ी-बड़ी बातें उसने कहीं। ज्ञान और भक्ति की अमूल्य अनुभूति को भी उसने सविस्तार समझाया। लोग मुग्ध होकर सुन रहे थे। मैं भी उसके भाषण को सुनकर अभिभूत हो गया। सोचा, सुशान्त ने बहुत देखा है, बहुत सीखा है। जीवन को उसने अच्छी तरह जिया है। उसकी सहनशीलता के कारण ही उसका जीवन-दर्शन इतना स्पष्ट है। सभा खत्म होने पर मैं उसके पास गया। मुझे देखकर वह खुशी से उछल पड़ा और बोला —अरे तू?

—हां, तेरा ही भाषण सुनने के लिए आया था। तेरे तो अब दर्शन ही नहीं होते!

—समय बिल्कुल नहीं निकाल पाता। फिर एक बड़ा-सा उपन्यास लिखना शुरू किया है और देख न, लोग छोड़ते ही नहीं। मीटिंगों में जबरदस्ती ले जाते हैं।

मैंने उससे धीरे से पूछा—कई बार तेरे घर जाकर लौट आया हूं। तू घर भी नहीं जाता। कहां रहता है?

—बहुत व्यस्त रहता हूं, समय ही नहीं मिलता।

—आखिर इतना भी क्या काम है?

—काम का भी कोई अन्त है क्या? तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं और आगे तीन उपन्यास लिखने के लिए रुपया एडवांस ले लिया है। इसके अलावा सभा-समितियों में फंसा रहता हूं।

—लेकिन तू लिखता कब है ? घर तो कभी मिलता नहीं। लिखने का काम कहां करता है ?

—यही तो कह रहा हूं। लिखने के लिए भी मेरे पास वक्त नहीं है। जब, जहां, थोड़ा समय निकाल पाता हूं—लिख लेता हूं। कभी किसी प्रकाशक की दुकान पर बैठकर या कभी किसीके घर बैठकर लिख लेता हूं। किसी तरह काम चला रहा हूं।

—लेकिन इस तरह से तो तेरा लिखना खराब हो जाएगा।

—खराब तो होगा ही। फिलहाल ख्याति ही मेरी दुश्मन है। अगर इतना यश नहीं कमाता तो शायद और अच्छा लिख सकता। पहला उपन्यास एकान्त में बैठकर लिखा था इसीलिए वह इतना अच्छा था।

— लेकिन अब भी तो एकान्त में बैठकर लिख सकता है। तेरा अपना घर है, पत्नी है। घर में ही किसी कमरे का दरवाज़ा बन्द कर के अगर तू लिखे तो कौन मना करेगा ?

—अब बहुत देर हो चुकी है, नये सिरे से फिर शुरू नहीं कर सकता। तुम-को मैंने कहा न कि नाम ही लेखक का सबसे बड़ा दुश्मन है। अब एक ही उपाय सोचता हूं, सब कुछ छोड़-छाड़कर किसी गांव में जाकर बस जाऊं।

मैंने कहा—तो फिर जाता क्यों नहीं ?

सुशान्त बोला—अगर चला गया तो जीवन को परखूंगा कैसे ? जीवन से विच्छिन्न होकर साहित्य-सेवा नहीं हो सकती। लेखक को जीवन के द्वन्द्व और भीड़ के साथ एकात्म होना पड़ता है और भीड़ के बीच रहकर भी अपने को भीड़ से अलग रखना पड़ता है।

—तू तो सब कुछ खुद समझता है, फिर मैं क्या राय दूं ?

—हां रे, मैं अपने ही फंदों में फंस गया। मेरा गुण ही मेरा दोष बन गया।

हम दोनों की बातचीत के बीच में ही एक लड़का और एक लड़की आकर बोले—सुशान्त जी, जल्दी चलिए, बहुत देर हो रही है। सुशान्त का एक हाथ एक लड़की ने पकड़ लिया और कहने लगी—मैं जानती थी कि यहां आने पर रात के आठ बज जाएंगे, उधर आपके लिए लोग बैठे हुए हैं। आठ बजे का समय दे रखा था, लेकिन पहुंचते-पहुंचते नौ बज जाएंगे।

मैं आश्चर्य से उन लोगों को देखता रहा। लड़की ने एक चमकीली साड़ी पहन रखी थी। खूब चटपटी बातें कर रही थी। बातचीत के दौरान कई बार साड़ी का पल्ला खिसक रहा था। सुशान्त से इस तरह बातें कर रही थी, मानो बहुत दिनों से उससे परिचित हो, मानो मुझसे ज़्यादा सुशान्त पर उसका ही अधिकार हो।

लड़की बोली—सुशान्त जी, मैंने अपने हाथों से आपके लिए कटलेट बनाया है। उसके साथ का लड़का अब तक चुप था। अब बोला—बुली कह रही थी, सुशान्त जी ने तो केवल 'व्हिस्की' के लिए कहा था, लेकिन पार्टी में 'जिन' भी रखना चाहिए।

—हां-हां ज़रूर रखो, जिसे पसन्द हो वह 'जिन' ही लेगा।

—क्यों सुशान्त जी, मैं ठीक नहीं कहती? काकटेल पार्टी में कुछ लोग 'व्हिस्की' छूते तक नहीं।

लड़का बोला—'जिन' लोग क्यों पीते हैं समझ में ही नहीं आता, बिल्कुल फालतू चीज़ है।

—तुम चुप रहो भी। बुली ने एक डांट लगाई—हाल में तो तूने पीना सीखा है, काकटेल-एक्सपर्ट कब से बन गया? मैं तुमसे ज़्यादा जानती हूं। बचपन से ही ये सब देखती आई हूं, क्योंकि मेरे घर में काकटेल-पार्टी का रिवाज है।

इन लोगों की बातचीत का मैं मौन श्रोता था, लेकिन मन में सोच रहा था। ये लोग आखिर हैं कौन? सुशान्त के साथ इनका क्या रिश्ता है, किस तरह की दोस्ती है? क्या ये सुशान्त के पाठक हैं? पर काकटेल-पार्टी में जाने वाले लड़के-लड़कियां क्या बंगला उपन्यास भी पढ़ते हैं? वे लोग मेरी उपस्थिति भूल गए थे। एकाएक सुशांत ने मेरी तरफ देखा और बोला—अच्छा, अब चलता हूं।

—फिर तुमसे कब भेंट होगी?

—मेरा हाल तो तू देख ही रहा है। कब भेंट होगी इसका वचन तो मैं नहीं दे सकता, लेकिन एक दिन तेरे घर आऊंगा ज़रूर!

मानव-जीवन के इतने परिवर्तनों को मैं देख चुका हूं कि आजकल किसी

बात पर मैं आश्चर्य नहीं करता। और उम्र भी ढल रही है। यौवन के उन दिनों जो कुछ मैं देखता था, आश्चर्य में पड़ जाता था। सुशान्त की ख्याति भी मैंने देखी और फिर एक दिन मेरी आंखों के सामने ही···

खैर, यह बात अभी रहने दो।

यह तो उस समय की बात बता रहा हूं जब सुशान्त का यश गगनचुम्बी था। जहां भी जाता उसीकी चर्चा होती। सुशान्त के उपन्यासों को लेकर पाठकों में तर्क उठता। साहित्य क्या है, साहित्य के सम्बन्ध में सुशान्त सान्याल के क्या विचार हैं—इन्हीं सब बातों को लेकर गरमागरम चर्चा होती रहती। कुछ लोग कहते, सुशान्त सान्याल मूलत कोई लेखक नहीं है, बल्कि मौसमी फूल है। दूसरी तरफ कुछ लोग सुशांत के लिखे 'पीला पुष्प' को इस युग का महाकाव्य मानते थे।

मैंने इस सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं कहा। क्योंकि सुशांत मेरा दोस्त था और दोस्त के लिए जो भी कुछ कहूंगा, लोग उसे पक्षपात समझेंगे। मुझे तो केवल सुशांत की चाल-ढाल को देखकर हैरानी होती थी। इतनी सभा-समितियों और भक्तों के बीच से समय निकालकर वह लिखता कब है?

यद्यपि सुशांत ने कहा था कि वह मुझसे भेंट करेगा, तथापि उसकी बातों पर मुझे यकीन नहीं था। लेकिन अगर सचमुच ही वह मेरे घर आता तो मुझे बड़ी खुशी होती। खैर, उसका मान-सम्मान और बढ़े, वह और बड़ा लेखक बने इसीमें मेरी खुशी थी। उसके यश को मैं अपना ही यश मानता था। इसके अलावा मेरी कुछ समस्याएं थीं, इसलिए सुशान्त से भेंट नहीं हो पाई।

एक दिन सुनने में आया कि सुशान्त की मां ने मुझे बुलाया है। शाम का वक्त था, फिर भी जिस हालत में था, उसके घर चल पड़ा।

किसी महिला ने दरवाजा खोला। मैंने कहा—मैं सुशान्त का दोस्त हूं। उसकी मां ने मुझे बुलाया था इसलिए आया हूं, माफ कीजिए, आपको तो मैंने ठीक से पहचाना नहीं, जरा मां जी को बुला दीजिए।

—मैं उनकी पत्नी हूं।

—ओह नमस्ते!

सुशान्त की पत्नी ने भी अपने दोनों हाथ जोड़ दिए।

—अब बताइए, क्या बात है? मां जी ने मुझे क्यों याद किया।

—आप बैठिए, मैं मां जी को बुला रही हूं।

मुझे बैठाकर वह अन्दर चली गई।

इतने दिनों के बाद सुशान्त की पत्नी को देखकर मैं पहचान नहीं पाया, क्यों-कि शादी के समय जिस लड़की को मैंने देखा, वह कुरूप तथा काली थी। हालांकि शादी के दिन कन्या सजी-धजी रहती है, फिर भी नई बहू में कोई सौन्दर्य मुझे नहीं दिखा था। लेकिन आज तो वह एकदम बदली हुई लग रही थी।

सुशान्त की मां आई, मैंने उन्हें प्रणाम किया। हाल-चाल पूछा। मां जी ने कहा—बहुत दिनों से तुम्हें बुलाने को सोच रही थी, लेकिन आज तुम्हें कष्ट देने के लिए बुलाना ही पड़ा।

—नहीं, नहीं, कष्ट की क्या बात है, अगर मुझसे कुछ हो सका तो जरूर करूंगा। आप संकोच मत कीजिए।

—तुम्हें छोड़कर कहूं भी किसे? मैं तो किसी और को जानती भी नहीं। देखो बेटा, सुशान्त आज करीब एक महीने से घर नहीं आया।

—क्या कह रही हैं आप?

—हां बेटा! दुखड़ा सुनाऊं भी तो किसे? कहां है, क्या करता है, मुझे कुछ भी नहीं मालूम।

—फिर आप लोगों का काम कैसे चलता है?

—भगवान भरोसे! किराये की जो थोड़ी-बहुत आमदनी है उसीसे किसी तरह गुजारा कर लेती हूं।

—लेकिन सुशान्त आता क्यों नहीं?

—कैसे बताऊं बेटा कि वह क्यों नहीं आता। यह सोचकर तो उसकी शादी की थी कि घर के प्रति उसका आकर्षण बढ़ेगा, लेकिन नतीजा विपरीत निकला। शादी के पहले थोड़ा-बहुत घर आता भी था, अब तो उसने घर छोड़ दिया।

—लेकिन सुशान्त ने तो खुद अपनी ही पसन्द से विवाह किया था?

—हां, शादी उसकी इच्छा से हुई थी। मैंने विरोध नहीं किया। उसकी अपनी पसंद की थी।

—आपकी बहू क्या कहती है।

—बहू की बात रहने दो ! कुछ न कहूं तो ही अच्छा है।

मैं समझ गया कि कहीं कोई गलतफहमी जरूर है। इसलिए आगे कुछ न पूछकर कहा — प्रकाशकों के यहां सुशान्त का पता मिल सकता है। आपने खोज की है।

—मैं तो उनमें से किसीको जानती नहीं बेटा। क्या खाक वह लिखता है यह भी नहीं जानती। मैं पढ़ी-लिखी तो हूं नहीं, केवल इतना ही जानती हूं कि वह किताबें लिखता है।

—आप धैर्य रखें। मैं कल ही उसका पता ढूंढकर आपको दे जाऊंगा।

—मैं तेरी आभारी रहूंगी, लेकिन उसका पता लेकर मैं क्या करूंगी? इससे तो अच्छा है कि तुम उससे मिलकर उसे मेरे पास ले आओ।

—ठीक है ऐसा ही करूंगा।

सुशान्त की मां बोली—उसे समझाना बेटा कि बहू का दोष चाहे जो कुछ हो, लेकिन मेरा क्या अपराध है? मैंने तो उसे छाती से लगाकर बड़ा किया है, जब तक मैं इस घर में हूं, उसके आने में क्या हर्ज है।

मां की ममता, मां का दुख समझने लायक बुद्धि सुशान्त के पास है, यह मैं मानता था। लेकिन सुशान्त की पत्नी ने आखिर कौन-सा अपराध किया है, यह मैं नहीं समझ सका। मैं उन लोगों को सान्त्वना देकर बाहर निकल आया। दरवाजे तक सुशान्त की मां पीछे-पीछे आई और धीरे से बोली—आज तुम्हें एक नई बात सुनाऊं, बेटे!

—कहिए।

—अन्दर बहू है, सुन लेगी। लेकिन तुम तो घर के लड़के की तरह हो। और किसीको मत बताना। सुशान्त ने यह मकान बेच डाला है।

—क्या कह रही हैं आप, मुझे तो विश्वास नहीं हो रहा है!

सुशान्त की मां डरते-डरते बोली—चुप-चुप, इतनी जोर से बात मत करो, बहू सुन लेगी तो आफत मचाएगी।

—आपकी बहू को अब तक कुछ नहीं मालूम!

—नहीं बेटे, किसीको कुछ नहीं मालूम, लेकिन कब तक छिपाया जा सक[illegible] है? मकान-मालिक का आदमी आज मकान खाली करने को कह ग[illegible]

यह खबर सुनकर मैं हतप्रभ रह गया। सुशान्त ने [illegible]

उसे पैसों की आखिर ऐसी भी क्या ज़रूरत आ पड़ी ? या किसी वदले की भावना से उसने ऐसा किया।

वास्तव में उसे पैसों की ज़रूरत होनी नहीं चाहिए। उसकी किताबें बाज़ार में खूब चल रही थीं, ऐसी हालत में पैसे की तो कमी नहीं आ सकती। और यदि बदले की बात है तो वह वदला किससे लेना चाहता है ?

मैं कुछ भी नहीं समझ सका। धीरे-धीरे घर की तरफ बढ़ गया।

मैंने कभी नहीं सोचा था कि सुशान्त की कहानी मुझे ही लिखनी पड़ेगी। परन्तु उस दिन जिन लोगों ने सुशान्त को श्रेष्ठ साहित्यिक का सम्मान दिया था, उसकी रचना को महाकाव्य माना था, उसपर भारी-भारी निवन्ध लिखे थे, वे प्राध्यापक अब भी कालेज में पढ़ाते होंगे, लेकिन आज वे सुशान्त को भूल गए हैं। लेकिन क्यों? क्या सुशान्त का कोई हीन आचरण ही इसका ज़िम्मेदार है।

मां से मिलने के दूसरे ही दिन मैं एक प्रकाशक की दूकान में गया, लेकिन उसने उल्टे मेरी ही पूछ-ताछ शुरू कर दी—आप कौन हैं, कहां से आए हैं, क्या ज़रूरत है ?

मैंने उनसे कहा—मैं सुशान्त का वचपन का दोस्त हूं। किसी ज़रूरी काम से उससे मिलने आया हूं।

—सुशान्त जी का हम लोगों को आदेश है कि हम उनका पता किसीको नहीं दें। हमें माफ करें। लोग सभा-समितियों में उनको ले जाने के लिए बहुत तंग करते हैं, इसीलिए वह किसीसे मिलते नहीं।

—विश्वास कीजिए, मैं किसी मीटिंग में ले जाने के लिए उनके पास नहीं आया हूं। मैं निजी ज़रूरत के लिए ही उनका पता मांग रहा हूं।

—माफ कीजिए हम पता नहीं दे सकते। ऐसे ही बहाने बनाकर लोग उन्हें तंग करते रहते हैं। उनके लिखने में बाधा पहुंचती है, इससे हम दोनों ही घाटे में रहते हैं।

इसके बाद और कुछ कहना व्यर्थ ही था, मुझे निराश होकर लौटना पड़ा। थोड़ा दुःख भी हुआ कि वचपन का दोस्त होने के बावजूद उसका पता प्रकाशक ने मुझे नहीं दिया। एक दिन किसी काम से मैं श्याम बाज़ार गया था, पता नहीं क्यों, दिमाग में आया कि लौटते वक्त मधु गुप्ता लेन जाकर सुशान्त की

खबर ले आऊं। हो सकता है, सुशान्त का पता उन्हें मालूम हो। मेडिकल कालेज के सामने मैं बस से उतर गया। रास्ता पहचानता था। बहुत दिन पहले सुशान्त के साथ ही पाखी के घर गया था। मन ही मन सुशान्त के लिए सोच भी रहा था। अपना पैतृक मकान उसने क्यों बेच डाला? शादी करने के बावजूद वह घर में क्यों नहीं रहता? इस रहस्य को जानने के लिए मैं मन ही मन बेचैन था।

बहुत-सी बातें दिमाग में भीड़ कर रही थीं। आज इतने वर्षों के बाद क्या पाखी मुझे पहचान सकेगी? कितने वर्ष बीत गए! इस बीच सुशान्त का कितना नाम और यश हो गया था, कितनी अच्छी पुस्तकें उसकी प्रकाशित हुई थीं। लेकिन मैं उस रात की बात सोच रहा था, जब मैं होटल में खाना खिलाकर पाखी को टैक्सी में बैठाकर इसी गली में छोड़ने गया था। टैक्सी से उतरकर पाखी बोली थी—अन्दर आइए न!

—बहुत रात हो चुकी है, अब चलता हूं।

—अभी तो रात होने में देर है, सुशान्त बारह-एक बजे तक रहता है।

—मैं तो सुशान्त नहीं हूं।

—सुशान्त न सही, और भी तो लोग यहां आते हैं, आप भी आइए।

—देर से घर लौटने पर मुझे तो डांट पड़ती है।

—क्या, आप अब भी बच्चे हैं क्या?

—जल्दी घर लौटना आपकी समझ में क्या बच्चों की निशानी है?

इतने में पाखी की मां बाहर आकर बोली—पाखी लौटी है क्या?

मां की तरफ देखकर पाखी चचकाने स्वर में बोली—देखो न मां, इतना कह रही हूं, फिर भी अन्दर नहीं आ रहे हैं।

—घर के दरवाजे पर से लौटना नहीं चाहिए बेटा! सुशान्त कहां है? आओ, अन्दर बैठो।

पाखी बोली—सुशान्त चला गया।

उसकी मां चौंक पड़ी—क्यों, कोई काम था क्या?

मैंने कहा—हां, सुशान्त पाखी को मेरे जिम्मे छोड़कर खुद किसी काम से चला गया।

—खैर, तुम संकोच मत करो, आराम से बैठो।

पाखी की मां की इस बेतुकी ज़िद के कारण टैक्सी का भाड़ा चुकाकर मुझे बैठना ही पड़ा।

पाखी की मां बोली—सुशान्त मेरे लड़के जैसा है, तुम भी वैसे ही हो। फिर पाखी से पूछा—तू खाकर आई है क्या ?

—हां मां, मैं खाक रही आई हूं।

—फिर इतनी जल्दी किस बात की है ? तुम लोग गपशप करो। मैं रसोई का काम समाप्त करके आती हूं।

पाखी बोली—आपने सुना नहीं ? मां आंपको आराम से बैठने के लिए कह गई है। पैर उठाकर तसल्ली से बैठिए।

—मेरे पैर गन्दे हैं। बिस्तर गन्दा हो जाएगा, आप सोएंगी भी तो इसी बिस्तर में।

पाखी थोड़ी नाराज़गी से बोली—आप मुझे बार-बार 'आप' क्यों कह रहे हैं ? मैं आपसे बहुत छोटी हूं।

मैंने कहा—लेकिन आपसे परिचय का पहला ही दिन है, इसलिए...

—पहला दिन है तो क्या ? सुशान्त के साथ भी परिचय मेरा बहुत पुराना नहीं है।

मैंने कुतूहल से पूछा—फिर भी, कितने दिनों का परिचय है ?

—यही कोई एक महीने का।

—बस, कुल एक महीना ?

पाखी बोली—हां सुशान्त भी आपकी तरह किसी दोस्त के साथ एक दिन मेरे घर आया था। उसके बाद वह कितना अपना हो गया है। मेरे घर जो भी एक बार आता है वह रोज़ ही आने लगता है। मेरी मां सबको अपना लेती है। आप फिर कब आइएगा ?

मैंने कहा—देखा जाएगा...

पाखी बोली—नहीं, हमें बोलकर हो जाइए कि अगली बार कब आएंगे।

—कह तो रहा हूं कभी मौका मिला तो आऊंगा।

—नहीं, कल ही आइए !

मुझे बड़ा ही गुस्सा आया, बोला— मैं वचन नहीं दे सकता।

पाखी बिल्कुल मेरे करीब आ गई, बोली—आप कहिए कि कल आऊंगा!

मैं थोड़ा दूर हट गया। वह फिर बोली—कल आइएगा न?

— इतना नज़दीक मत आओ, मा जो आ जाएगी।

—नहीं, मा अभी नहीं आएंगी। लेकिन आप वचन दीजिए कि कल आएंगे, नहीं तो मैं जाने नहीं दूंगी। बोलिए, बोलिए न!

मैं मुश्किल मे पड गया। ऐसा कुछ हो सकता है, मुझे अन्दाज़ भी नहीं था। ऐसे परिवारों की बात मैंने सुशान्त से सुनी थी, लेकिन कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं था। सुशान्त का लिखा उपन्यास 'पीला पुष्प' पढकर ही मुझे लगा था कि इन्हीं लोगों को लेकर सुशान्त ने उपन्यास लिखा है। इन लोगों को बिना जाने 'पीला पुष्प' की तरह उपन्यास केवल कल्पना के सहारे नहीं लिखा जा सकता।

आज याद करता हू, उस दिन मुझे किस भयकर परिस्थिति का सामना करना पड़ा था, यह तो मैं और मेरी अन्तरात्मा ही समझ सकती है। लग रहा था, कहीं भाग जाऊं।

लेकिन पाखी इतनी आसानी से छोड़ने वाली लड़की नहीं थी। बोली—सच में आपकी तरह का ज़िद्दी आदमी मैंने अभी तक नहीं देखा। कैसे आदमी हैं आप? मेरी एक ज़रा-सी बात भी नहीं रख सकते!

मैंने कहा—मेरे आने से तुम लोगों का क्या फायदा है?

पाखी बोली—छि:-छि:, फायदे के लिए कौन कह रहा है। आपसे नया परिचय हुआ है। इसीलिए कह रही हूं।

—लेकिन मैंने तो तुम्हें कहा न, मैं आने की कोशिश करूंगा।

अचानक पाखी बोली—आप मुझपर नाराज़ हैं?

—तुमपर खामखा नाराज़ क्यों होऊंगा, तुमने ऐसा क्या किया है?

पाखी ने रूठते हुए कहा—मैं क्या सचमुच मे बहुत खराब हूं देखने में?

पाखी की इस बात से मैं अचानक बहुत डर गया। इस मुहल्ले मे मेरा कोई परिचित नहीं। अकेलेपन का नाजायज फायदा उठा रहा हू, यह कहकर यदि पाखी चिल्लाए और मुझे पुलिस मे पकडवा दे तो मैं क्या कर सकूंगा? होटल में अंगूठी गिरवी रखने का घाव अभी ताज़ा था।

मैंने कहा—अब मुझे चलना चाहिए।

इतने में अन्दर से मां वोली—मैं आ रही हूं पाखी, उन्हें वैठा कर रखो।

पाखी वोली—वस, अब मां जव तक नहीं आती, आपको वैठना ही पड़ेगा। इतना कहकर पाखी अचानक एक तमाशा कर वैठी, वोली—आप इतना डर क्यों रहे हैं! आपके घर कौन है? घर जाकर तो वही अकेले विस्तर में सोना पड़ेगा।

मैं गरजकर बोला—मुझसे ऐसी वातें मत करो।

पाखी थोड़ी देर चुप रही, फिर एकाएक मेरी गोद में लुढ़क पड़ी और सिसक-सिसककर रोने लगी।

सच में, मुझे भी अपनी हालत पर रोना आ रहा था। वहुत हीं संकोच से मैंने पाखी को उठाने की कोशिश की और कहा—उठो, उठो। तुम्हारी मां क्या सोचेंगी, कहो तो! छिः-छिः यह क्या कर रही हो, एकाएक तुम्हें हो क्या गया?

लेकिन पाखी पर कोई असर नहीं हुआ, वह और विलख-विलखकर रोने लगी। मैंने घवराकर कहा—मेरी वात मानो और रोना वन्द करो।

पाखी सिसकियां भरती हुई वोली—नहीं, मैं नहीं उठूंगी, मेरा क्या अपराध है कि आप मुझसे मुंह फेर रहे हैं?

—साफ-साफ कहो, आखिर कहना क्या चाहती हो? यह कहकर मैंने जवर-दस्ती उठाकर वैठा दिया और गरजकर वोला—अपना रोना-धोना वन्द करो, कहना क्या चाहती हो? मुझे सुशान्त समझ रही हो क्या?

एक मुहूर्त में पाखी का रोना वन्द हो गया। वोली—आप ठहरे वड़े आदमी, आप तो ऐसा कहेंगे ही। हम गरीव हैं, इसलिए आप मेरा अपमान कर रहे हैं। आज यदि राशन के लिए मेरे पास रुपया रहता, गाड़ी रहती तो मैं भी आप लोगों को दिखा देती। भरपेट खाना नहीं मिलता है, इसीलिए तो आपकी खुशामद करती हूं। आपको किस वात की चिन्ता है। आपके मां-वाप, भाई-वहन, यार-दोस्त, पत्नी सव कुछ है। पाकेट में पैसे हैं। आप कैसे समझ सकते हैं कि किसे भूख कहते हैं, किसे चरित्र कहते हैं और किसे शर्म कहा जाता है? ठीक ही है, हम क्या मनुष्य हैं? नहीं! हम तो आपके हाथों के खिलौने हैं।—कहते-कहते पाखी फिर से फूट पड़ी। लेकिन फिर अपने को संभाला और वोली—कितने दुख से कोई मां अपनी वेटी को पराये आदमी के पास छोड़ सकती है, इसकी वेदना आप नहीं आंक सकते। कितनी लज्जा से आज मैं निर्लज्ज वनी हूं, आपको जानने की जरूरत भी नहीं। आप खुद खाते हैं, खुद जी लेते हैं; हम लोगों के लिए सोचने का

वक्त भी कहां है आपके पास ?. निजी जीवन के सुख-दुख के संकीर्ण दायरे में ही आप निश्चिन्त रहते हैं। हम लोगों की घुटन आप लोगों तक नहीं पहुंच पाती। जाइए, अब आप घर जाइए !

मैं आश्चर्यचकित हो गया। जिस पाखी को आज मैं शाम से देख रहा था, यह वह नहीं थी, अब उसका एक नया रूप मेरे सामने था।

मैंने उससे कहा—मुझे गलत न समझो पाखी।

पाखी मुझसे और दूर सरक गई और बोली—रात हो रही है, अब आप घर जाइए !

फिर भी मैंने कहा—सुनो। तुम बुरा तो नहीं मान गई ?

—कृपा करके चले जाइए। अभी तुरन्त। जाइए।

अन्दर से पाखी की मां की आवाज़ आई—किसे क्या बक रही हो पाखी ? बेटे को थोड़ा बैठने के लिए कहो, मैं अभी आई। लेकिन पाखी अनसुनी कर गई। बोली—अब भी ढीठ की तरह बैठे हैं ? जाइए।

मैं धीरे-धीरे उठा। और निःशब्द उसके घर से निकल आया।

उस दिन ये बातें मैंने सुशान्त को नहीं बताईं। दूसरे ही दिन श्याम बाज़ार के उस होटल में जाकर साढ़े तेईस रुपये देकर अपनी अंगूठी छुड़ा लाया था। लेकिन इन बातों को मैं भूल नहीं पा रहा था। मेरे अन्दर का कुतूहल भी बढ़ता जा रहा था। सोचा था, यदि कभी उपन्यास लिख सका तो इस पाखी को लेकर ही लिखूंगा। लेकिन मेरे न लिखने पर भी तो सुशान्त ने तो लिखा ही था। 'पीला पुष्प' लिखकर ही सुशान्त बंगला-साहित्य का बेजोड़ उपन्यासकार बन गया था।

जब आज दुबारा मुझे मधु गुप्ता लेन आना पड़ा तब सारी यादें फिर से ताज़ी हो आईं। लेकिन उस मकान के नज़दीक जाकर मैं चौंक पड़ा। बिल्कुल बदला हुआ मकान था। अचानक उस मकान के अन्दर कुछ कोलाहल सुनाई पड़ा। मैं झांककर हैरान रह गया ! सुशान्त की पत्नी यहां कैसे आई ?

मैं अन्दर चला गया। कोलाहल और कलह के बीच मेरे अस्तित्व का पता किसीको नहीं लगा। मैंने देखा—सुशान्त की पत्नी पाखी के साथ झगड़ रही थी।

मुझे देखकर एक सज्जन ने आगे बढ़कर पूछा—आप··· ?

इतने में अन्दर से मां वोली—मैं आ रही हूं पाखी, उन्हें वैठा कर रखो।

पाखी वोली—वस, अब मां जव तक नहीं आती, आपको वैठना ही पड़ेगा। इतना कहकर पाखी अचानक एक तमाशा कर वैठी, वोली—आप इतना डर क्यों रहे हैं! आपके घर कौन है? घर जाकर तो वही अकेले विस्तर में सोना पड़ेगा।

मैं गरजकर वोला—मुझसे ऐसी वातें मत करो।

पाखी थोड़ी देर चुप रही, फिर एकाएक मेरी गोद में लुढ़क पड़ी और सिसक-सिसककर रोने लगी।

सच में, मुझे भी अपनी हालत पर रोना आ रहा था। वहुत ही संकोच से मैंने पाखी को उठाने की कोशिश की और कहा—उठो, उठो। तुम्हारी मां क्या सोचेंगी, कहो तो! छिः-छिः यह क्या कर रही हो, एकाएक तुम्हें हो क्या गया?

लेकिन पाखी पर कोई असर नहीं हुआ, वह और विलख-विलखकर रोने लगी। मैंने घवराकर कहा—मेरी वात मानो और रोना वन्द करो।

पाखी सिसकियां भरती हुई वोली—नहीं, मैं नहीं उठूंगी, मेरा क्या अपराध है कि आप मुझसे मुंह फेर रहे हैं?

—साफ-साफ कहो, आखिर कहना क्या चाहती हो? यह कहकर मैंने जवरदस्ती उठाकर वैठा दिया और गरजकर वोला—अपना रोना-धोना वन्द करो, कहना क्या चाहती हो? मुझे सुशान्त समझ रही हो क्या?

एक मुहूर्त में पाखी का रोना वन्द हो गया। वोली—आप ठहरे वड़े आदमी, आप तो ऐसा कहेंगे ही। हम गरीव हैं, इसलिए आप मेरा अपमान कर रहे हैं। आज यदि राशन के लिए मेरे पास रुपया रहता, गाड़ी रहती तो मैं भी आप लोगों को दिखा देती। भरपेट खाना नहीं मिलता है, इसीलिए तो आपकी खुशामद करती हूं। आपको किस वात की चिन्ता है। आपके मां-वाप, भाई-वहन, यार-दोस्त, पत्नी सव कुछ है। पाकेट में पैसे हैं। आप कैसे समझ सकते हैं कि किसे भूख कहते हैं, किसे चरित्र कहते हैं और किसे शर्म कहा जाता है? ठीक ही है, हम क्या मनुष्य हैं? नहीं! हम तो आपके हाथों के खिलौने हैं।—कहते-कहते पाखी फिर से फूट पड़ी। लेकिन फिर अपने को संभाला और वोली—कितने दुख से कोई मां अपनी वेटी को पराये आदमी के पास छोड़ सकती है, इसकी वेदना आप नहीं आंक सकते। कितनी लज्जा से आज मैं निर्लज्ज वनी हूं, आपको जानने की जरूरत भी नहीं। आप खुद खाते हैं, खुद जी लेते हैं; हम लोगों के लिए सोचने का

अब पाखी ने भी मुझे देख लिया था और सुशान्त की पत्नी तो मुझे देखते ही दहाड़ मारकर रो पड़ी। बोली—आप ? आप आए हैं ?

—हां, लेकिन आप यहां क्यों आईं ? मां को तो मैं कह आया था कि सुशान्त का पता मैं कहीं से भी ढूंढ़कर दे जाऊंगा।

सुशान्त की पत्नी बोली—लेकिन बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने पर भी जब आप नहीं आए, तब पता लगाकर मैं खुद यहां पहुंच गई। सुना है, उन्होंने मेरे ससुर के मकान को बेचकर इन लोगों को यह खरीदकर दे दिया है।

वह सज्जन गरजकर बोले—खबरदार, झूठ मत कहिए, यह मकान मैंने अपने पैसे से खरीदा है।

पाखी की मांग में सिन्दूर देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा था। पाखी बोली—आपके पति के पैसों से यह मकान खरीदा गया है···यह आपसे किसने कहा ?

सुशान्त की पत्नी बोली—मेरे पति ने ही कहा है।

उस सज्जन ने कहा—फिर बुलाइए अपने पति को ! वह अपने मुंह से आकर कहे। ज़रा उसकी हिम्मत भी परख लूं।

—मेरे पति झूठ नहीं कहते ! सुशान्त की पत्नी बोली।

उन लोगों की बात काटकर मैंने कहा—दरअसल बात क्या है ? ज़रा मैं भी तो सुनूं !

उस सज्जन ने पूछा—पाखी, यह सज्जन कौन हैं ? तुम इन्हें जानती हो ?

मैंने कहा—मैं सुशान्त का दोस्त हूं। उसका पता लगाने के लिए ही मैं यहां आया था। आप···? आपको पहले यहां कभी नहीं देखा।

अब पाखी की मां सामने आई और जैसे कुछ मालूम ही न हो। अचरज के साथ पूछा—यहां भीड़ लगाकर तुम लोग कर क्या रहे हो ?

उस सज्जन ने कहा—देखिए न मांजी—यह औरत कह रही है कि यह मकान उसके पति के पैसों से खरीदा गया है।

पाखी की मां जैसे आकाश से गिर पड़ी। बोली—ओ मां, मैं कहां जाऊं ? मेरे अपने दामाद ने चालीस हज़ार रुपये खर्च करके इस मकान को खरीदा है। और तुम कह रही हो कि वह रुपया सुशान्त का था ? सुशान्त के पास इतने रुपये कहां से आएंगे।

मैं बीच में ही बोल पड़ा—लेकिन मां जी, उसने मकान बेच क्यों दिया ?

पाखी की मा बोली—मैं कैसे बताऊं बेटा ! लड़का फिजूल खर्च करता था। दोनों हाथों से पैसा लुटाता था। हो सकता है उसने नशे में पैसा खर्च कर डाला हो ! इतना कहकर उस सज्जन के साथ मेरा परिचय कराते हुए बोली—यह मेरे जमाई हैं। बहुत बड़ा कारोबार है इनका। जमाई ने ही इस मकान को खरीद लिया है···नहीं तो मैं कहा जाती ? तुम लोग तो हमसे कतरा ही गए।

उस सज्जन-जमाई ने कहा—आप लोग व्यर्थ ही समय गंवाने के लिए यहा आए हैं। सुशान्त यहा नहीं है।

मैं आश्चर्य के साथ चारों तरफ देख रहा था। सोच रहा था, पाखी के साथ इस सज्जन पुरुष का विवाह कब हुआ ? पाखी ने इस आदमी को कैसे पकड़ा ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। केवल बार-बार मन में यही बात गूंज रही थी—ऐसा भी होता है···

मैंने सुशान्त की पत्नी को समझाया—झगड़ा करने से कोई फायदा नहीं है। चलिए, घर लौट चलें।

वह रोने लगी। बोली—कहा जाऊं ? हम लोगों के लिए तो कोई जगह भी नहीं है। दो-चार दिनों में सास का हाथ पकड़कर सड़क पर बैठना पड़ेगा।

मैंने धीरज बंधाया—ऐसा क्यों कह रही हैं आप ? सुशान्त है। वह आप लोगों को देखेगा।

सुशान्त की पत्नी बोली—लेकिन उनका तो कोई अता-पता ही नहीं। कहा छुपे हैं कौन उनकी खबर लाएगा ?

फिर भी किसी तरह उस दिन सुशान्त की पत्नी को समझा-बुझाकर घर भेज ही दिया। फिर बाद में सुना कि महीने-भर बाद ही उन्हें वह घर खाली करना पड़ा। यह भी सुनने में आया था कि उसकी मां बेहाला या यादवपुर में किसी दूर के रिश्तेदार के यहा बोझ बनकर जीवन की आखिरी सांस गिनने चली गई है।

उसके बाद ?

उसके बाद, बहुत दिनों के बाद एक दिन सुशान्त मेरे घर पर आया। उसकी मां मर चुकी थी।

सुशान्त सान्याल के नाम से किसी लेखक को अब आप नहीं जानते होंगे

बीच के कई सालों में वह बूढ़ा भी हो गया। उसके रुपयों से खरीदे गए उस मकान में पाखी, उसके पति और उसकी मां सभी अभी भी सुख से हैं।

और सुशान्त ? उसे देखकर दया आ रही थी। पूछा—सुशान्त ! कैसा है रे अब तू ?

सुशान्त बोला—सुना है सरकार बूढ़े साहित्यकारों को सौ-दो सौ रुपये महीने का पेन्शन देने का विचार कर रही है। जरा कोशिश करके हमें भी दिलवा सकोगे ? कभी मैं भी तो लिखता था। मेरे 'पीला पुष्प' उपन्यास की तो तारीफ भी हुई थी।

मैं क्या उत्तर देता ? इस बात का जवाब देना क्या मेरे लिए सम्भव था ?

उसके बाद से मैंने सुशान्त के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखा। नहीं रख सकता था—इसीलिए सम्पर्क तोड़ना ही अच्छा था। आज वह जीवित भी है या नहीं, मुझे नहीं मालूम।

सुशान्त की ऐसी परिणति की क्या मैंने कभी कल्पना भी की थी ?

गुलज़ारी बाई

जन्म-मृत्यु, आशा-निराशा, पाप-पुण्य, प्रेम-परिणय आदि का ही नाम जीवन है। फिर भी, हज़ारों-लाखों उपन्यास लिखकर भी जीवन के रहस्य को समझाया नहीं जा सकता। रहस्य ही इसका आकर्षण है और दूसरी तरफ यही जीवन की अशान्ति। वह रहस्य रहेगा और इस रहस्य को जानने के लिए मनुष्य तपस्या भी करता रहेगा। मनुष्य का शायद यही भाग्य है।

आदिम युग में मनुष्य सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों और प्रकृति की ओर देखकर प्रश्न करता—तुम कौन हो?

प्रश्न करने के लिए कई लोग थे, पर उत्तर देने के लिए कोई नहीं। इस प्रश्न के समाधान के लिए हज़ारों प्राण उत्सर्ग हुए, हज़ारों ताल-पत्र लिखे गए, हज़ारों किताबें लिखी गईं। किसीको उत्तर मिला, किसीको नहीं। और जिन्होंने कहा कि उन्होंने उत्तर पाया है, उनमें से अधिकांश ने मनगढ़न्त बात ही कही, कइयों ने अपनी कल्पना का बखान कर दिया। दरअसल अपनी आकांक्षा और योग्यता के अनुसार ही उन्होंने अपनी उपलब्धियों की बात भी की। देखा जाए तो अतीत से लेकर आज तक उसी एक प्रश्न और उसके उत्तर का क्रम चला आ रहा है। किसीकी बात पूरी सच्ची नहीं और किसीकी बात पूरी झूठी भी नहीं। किसीने कहा—'मैं उन्हें नहीं जान सका।' किसीने कहा—'वह स्पष्ट हैं, प्रत्यक्ष हैं और मनुष्य हैं।' स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'ईश्वर ने ही मनुष्य का रूप धारण किया था और अब मनुष्य ही ईश्वर बनेगा।' लेकिन इन गूढ़ बातों से मन तृप्त नहीं होता। साधारण आदमी हर चीज़ को प्रत्यक्ष देखना, जानना और पाना चाहता है। वह तो कहता है—मुझे तो मनुष्य-जीवन की

कहानी सुनाओ, जिसके जीवन में आशा-निराशा, 'पाप-पुण्य, जीवन-मृत्यु, प्रेम-परिणय आदि हैं। मैं उसीकी कहानी सुनना चाहता हूं जिसके जीवन से मैं अपना जीवन मिला सकूं और देख सकूं कि हममें अन्तर है या नहीं, और है तो कितना और यदि मेल है तो वह भी कितना ? उसकी कहानी सुनना चाहता हूं जिसके दुख से मेरा दुख कम हो जाएगा और जिसके सुख से जीने की आशा मिल जाएगी।

लेकिन विधाता का काम आशा दिलाना नहीं है। सृष्टि के आरम्भ से वह स्वयं ही दुःख से कातर है और चूंकि मनुष्य दुःख पाता है इसीलिए मनुष्य का ईश्वर भी करुणामय है। उनके प्यार की वेदना वांटकर भोगने के लिए ही मनुष्य की सृष्टि हुई है।

पहले प्रेम की ही वात लेते हैं।

यह प्रेम तो आज के युग की चीज़ नहीं है। यह उस समय से है जव हम लोगों में से कोई इस वंगाल में नहीं था—शायद जन्म भी नहीं हुआ था। लेकिन वंगाल प्रदेश तो था ही। वृक्ष-पहाड़, नदी, आकाश, चन्द्र-सूर्य, जन्म-मृत्यु, आशा-निराशा, पाप-पुण्य, प्रेम-परिणय आदि सव कुछ आज की ही तरह थे। उस समय भी लोग प्यार करते थे, हंसते थे, रोते थे, गृहस्थी वसाते थे।

यह कहानी भी दो सौ वर्ष पुरानी एक प्रेम-कहानी है।

जव मैं 'वेगम मेरी विस्वास' लिख रहा था, तव सोचा था कि 'गुलज़ारी वाई' की कहानी कहीं जोड़ दूंगा, पर लिखना ही भूल गया। नवावों के खान-दानी अदव-कायदे, रीति-रिवाज, नियम-कानून के वारे में लगातार कई सालों तक पढ़ना पड़ा था। मुस्लिम संस्कृति के साथ एकात्म हो गया था। केवल कहानी के लिए ही नहीं। कहानी तो मात्र एक उपलक्ष्य था। असल लक्ष्य था—वह युग। अगर किसी किताव को पढ़ते समय उस युग के वातावरण और आवोहवा के वीच यदि अपने को खो न सकूं तो न तो किताव पढ़ने से ही कोई फायदा है और न ही किताव लिखने से।

गुलज़ारी वाई की घटना या कहानी मैं उन्हीं दिनों जान सका था।

कलेट साहव जव कासिम वाज़ार आए, गुलज़ारी वाई की वात वह भी नहीं जानते थे। 'तारीख-ए-वंगाल' नामक फारसी पुस्तक में सारी वातें हैं, पर गुलज़ारी वाई का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। 'रियाजस-सलातीन' में भी नहीं है। गुलाम हुसैन ने भी गुलज़ारी वाई के लिए 'दो शव्द' नहीं लिखे।

कलेट साहब उस समय कासिम बाजार की कोठी के कर्ता-धर्ता थे। मुर्शिदाबाद की सारी खबरें, कलेट साहब कैप्टन ड्रेक तक पहुंचाते थे।

और नवाब अलीवर्दी की मृत्यु के बाद से तो कलेट साहब की जिम्मेदारी और भी बढ़ गई थी। ड्रेक पूछता—मुर्शिदाबाद का क्या हाल-चाल है, कलेट? कलेट कहता—हाल-चाल तो अच्छा नहीं है। उमराह लोग शायद बगावत कर दें।

—यह तुमने कैसे समझ लिया कि बगावत होगी?

कलेट कहता—सभी लोग ऐसा ही कह रहे हैं।

—सभी लोगों से क्या मतलब? कैसे लोग?

—जो लोग नवाब के इर्द-गिर्द घूमते हैं वे ही कहते हैं।

—ओफ! क्या कहते हैं, यही कहो न?

अब कलेट थोड़ा खुलता। कहता—यार लुत्फखां दसहजारी मनसबदार है—वह हमारे दल में आना चाहते हैं।

—और कौन?

—महताबचन्द जगत सेठ। नवाब के बैंकर हैं। उसके बाद नदिया के महाराजा कृष्णचन्द्र।—बीच-बीच में इस तरह की खबरें जुगाड़कर कलेट साहब कलकत्ता ले आता था।

कहां कासिम बाजार और कहां कलकत्ता? कलकत्ता में कलेट के दिन बड़े मजे में बीतते थे। अमीचन्द अंग्रेजों का जिगरी दोस्त था। आदमी वह दिलदार था ही। खाने-पीने का बहुतेरा इन्तजाम वह अपने घर पर ही करता था। मुगलाई खाना, अंग्रेजी खाना, हिन्दुस्तानी खाना—किसी चीज की कमी नहीं थी अमीचन्द के यहां।

कलेट वहां भी पहुंच जाता।

—क्या खबर लाए हो साहब? मुर्शिदाबाद का हालचाल?

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साहब लोग अमीचन्द के यहां छुपकर आते-जाते थे। क्योंकि अमीचन्द थे मुर्शिदाबाद के नवाब के दोस्त। अगर अंग्रेजों के साथ-मेल-जोल की बातों का नवाब को पता चल जाता तो अमीचन्द या कम्पनी, किसीकी खैरियत नहीं थी।

यहीं पर इसी अमीचन्द के यहां ही कलेट साहब का परिचय हुआ था छब्बीस

वर्ष के एक अंग्रेज नौजवान के साथ।

जान कैम्पवेल।

इस कहानी का नायक।

किस उद्देश्य से प्रेरित होकर वह भारत आया था यह किसीको मालूम नहीं।

कलेट ने एक दिन अमीचन्द से पूछ ही लिया—इसे कहां से जुटा लाए? कम्पनी का आदमी तो नहीं लग रहा है।

कैम्पवेल मुस्करा रहा था। बोला—मैं डाक्टर हूं।

अमीचन्द बोला—मेरे पैर में गठिया हो गया था, कैम्पवेल की दवाई से बिल्कुल ठीक हो गया हूं।

—कहां से डाक्टरी सीखी है तुमने? लन्दन से?

कैम्पवेल बोला—मैं तो लन्दन कभी गया ही नहीं। गांव का लड़का हूं। केवल जहाजों में सैर की है।

—तो फिर डाक्टरी कैसे सीखी?

—लाहौर में! कैम्पवेल धीरे से बोला—लन्दन से दूर के किसी बन्दगाह से एक दिन किसी जहाज़ पर बैठ गया। उसके बाद उसी जहाज़ में बैठा-बैठा एक ह से दूसरी जगह और इस तरह आठ महीनों के बाद भारत पहुंचा। पहले दिल्ली चला गया था, फिर वहां से लाहौर। लाहौर में ही किसी हकीम के यहां कुछ दिन रहा था। हकीम के साथ रहते समय ही देखा था कि दवाइयां कैसे बनाई जाती हैं। हकीम साहब के कहने के अनुसार मैं इमामदस्ते में हर्रे को कूटकर गोलियां बनाता। गोलियों को धूप में सुखाता और उसके बाद उन गोलियों को पत्थर के बने डब्बों में भरकर रखता।

कलेट ने पूछा—तुम पारारोग ठीक कर सकते हो?

कैम्पवेल बोला—अगर पारारोग ही न ठीक कर सका तो हकीमी चलेगी कैसे? यह रोग तो नवाबों-बादशाहों का ही है। पारारोग, गर्मीरोग, सूज़ाक, मालेखुलिलया दिमागी—कितनी तरह की बीमारियां हैं।

—मालेखुलिलया दिमागी किसे कहते हैं?

कैम्पवेल बोला—यही, हमारे यूरोप के सीफिलिस की तरह की बीमारी है।

—तुम कासिम बाजार चलोगे ? वहां कम्पनी का हाउस है। भारत मे इसे कोठी कहते हैं, कलेट ने पूछा।

कैम्पवेल हंसकर बोला—भारत में जब आ ही गया हू तब जहा कहोगे वही चला चलूंगा। कहो तो नरक में भी चलूं।

खैर, ऐसा ही बन्दोवस्त किया गया। अमीचन्द ने कहा—साहब, तुम वेफिक्र होकर जाओ। किसी चीज़ की जरूरत पड़े तो खबर करना। मेरा दरवाज़ा तुम्हारे लिए हमेशा खुला रहेगा। मैं यहां रहूं या नही, तुम कलकत्ता आने पर मेरे यहा ही ठहरोगे। किसीको आपत्ति नही होगी। अमीचन्द ने अपने नौकर जगमोहन को भी साहब की देखभाल करने का हुक्म दे दिया।

इस तरह कलेट साहब कासिम बाज़ार की कोठी मे अकेले नही लौटे। एक पागल साहब को भी साथ ले आए। सच मे साहब बड़ा विचित्र था। कैम्पवेल साहब को रत्ती-भर भी लज्जा-शर्म नही थी। गर्मी और पसीने का देश है बंगाल। उघाड़े बदन एक पैण्ट पहनकर साहब दिन-भर मारा-मारा घूमता-फिरता था। किसानों और मज़दूरों के साथ बैठकर बीड़ी पीता, तम्बाकू खाता और—उन्ही के साथ नमक-मिर्च डालकर बड़ी रुचि के साथ बासी भात भी।

और जब कोई बीमार पड़ता तब साहब उसे दवाई देता। गठिया, खासी, रूसी आदि-आदि। कैम्पवेल साहब बड़े प्यार से हर रोगी को देखता और उसकी मरहम-पट्टी करता। रुपये-पैसे की कोई बात नही थी। बस, बीमारी ठीक हो जाए। दवाई काम आ जाए—साहब को इससे बड़ी चाह और कुछ नहीं थी। दफ्तर में काम-काज के बीच में ही कभी-कभी कलेट कैम्पवेल को टोकता। कहता —क्या आवारागर्दी कर रहे हो, बेल ?

कैम्पवेल बोलता—क्यों ? मैं तो हकीमी करता हूं।

—वह तो ठीक है। पर उन लोगो के साथ इतना मेल-जोल बढाने की क्या ज़रूरत है ? हम ठहरे बनिये और वे ठहरे बादशाह की जात। उनके बीच बहुत से जासूस भी हैं। तुम्हें कुछ मालूम भी है ?

—जासूस ?

—हां जासूस। नवाब हम लोगों को सन्देह की दृष्टि से देखता है। उन्हें पता चल गया है कि कलकत्ता मे हम लोगो ने एक किला बनाया है। और किला बनाना गुनाह है। हम लोग व्यापार के लिए ही भारत आए हैं, पर वे समझते हैं

कि हम यहां अपना राज जमाने आए हैं।

कैम्पवेल बोलता—लेकिन मैं कौन होता हूं ? मैं तो कम्पनी का कोई भी नहीं। मैं डाक्टर हूं। जब कोई बीमार पड़ता है तब मैं उनके काम आता हूं।

वास्तव में कैम्पवेल साहब पर रोग ठीक करने का नशा सवार था। अगर कोई तम्बाकू पीकर खांसता, तो साहब तुरन्त पाकिट से एक गोली निकालकर उसे देता और कहता—यह गोली खा लो, खांसी बिल्कुल ठीक हो जाएगी।

केवल खांसी ही नहीं, कैम्पवेल जनाना रोगों की भी चिकित्सा करता और उसकी दी हुई दवाई रामबाण सिद्ध होती।

कोठी के साहब भी कैम्पवेल से खुश थे क्योंकि अब उन्हें अपने रोग के लिए किसी भारतीय के सामने झुकना या धरना देना नहीं पड़ता।

कलेट बोलता—वेल, दोस्ती अपनी जगह पर है, पर अंग्रेज़ का सम्मान मत खो देना।

खैर—बहुत किताबें छानने के बाद भी अठारहवीं सदी के इतिहास में ऐसा विचित्र चरित्र का अंग्रेज़ कोई दूसरा नहीं मिला। चेहरे से बिल्कुल ग्रीक देवता अपोलो-सा लगता। गोरा वदन—भारत की गर्मी में भी वदन पर दाने-फुंसी नहीं दिखाई पड़ते।

कलेट चकित होकर पूछता—तुम्हारे वदन पर फुंसी नहीं निकलती वेल ?

कैम्पवेल कहता—नहीं। रात में मैं हकीमी दवाई लगाकर सोता हूं।

बस। उसके बाद से तो कोठी के सभी साहब हकीमी दवाई मलकर ही सोने लगे।

मच्छरों से तंग आकर गांव के लोग भी दवाई लेने के लिए होड़ करने लगे। 'मच्छर वाला तेल हमें भी थोड़ा दो साहब।' इस तरह से कासिम बाज़ार गांव से बीमारी ही भाग खड़ी हुई। साहब रोग का इलाज करता—दवाई देता पर पैसा नहीं लेता। लेकिन लोग भी नमकहराम नहीं थे। बिना पैसे की दवाई लेने में उन्हें भी संकोच होता। वे दवाई के बदले भेंट के तौर पर और कुछ दे जाते। खेत के बैंगन, नया गुड़, नया अंगोछा, धोती, मछली या मुर्गी जिसको जो सूझता, दे जाता।

कैम्पबेल बोलता—यह बड़ा अजीब देश है कलेट। मैंने लाहौर देखा, दिल्ली

देखी, पर बंगाल की तरह के माई डियर लोग मुझे और कहीं नहीं मिले।

थोड़ा रुककर कैम्पबेल साहब फिर बोलता—तो ठीक है भाई, मैं तो सेटल कर गया। यहां से बिल्कुल नहीं हिलूंगा। इतना खाना है इतनी खातिर है, ऐसा क्लाइमेट भी और कहीं नहीं है। यही मेरा होम है। यही मेरा होमलैण्ड—लौंग लिव बंगाल !

लेकिन जिसने भी इतिहास पढ़ा है वह जानता है कि अंग्रेजों के सुख के दिन लम्बे नहीं रहे। अंग्रेजो को क्यों नहीं यह सुख बर्दाश्त हुआ, उसका कारण कुछ और ही है। उसके लिए कुछ हद तक दुनिया का राजनीतिक इतिहास उत्तरदायी है, लेकिन कैम्पबेल को क्यों नहीं सहन हुआ, यही इस उपन्यास की कहानी है।

असल में गुलजारी बाई की कहानी जो पढ़ेगा उसके लिए कैम्पबेल के चरित्र को जानना जरूरी है। जिसके मन में पीछे का खिंचाव नहीं है वही परदेश को अपना देश और घर मानकर रह सकता है। यदि अपना ही देश न माने तो क्या कोई भी अंग्रेज खजूर के पेड़ पर चढ़कर बंगालियों की तरह खजूर का रस पीने का आनन्द उठा सकता है ? खजूर रस कैम्पबेल साहब को बहुत पसन्द था। साहब कहता—अगर कभी स्वदेश वापस गया तो यहां से एक खजूर का पौधा जरूर साथ ले जाऊंगा। अपने फ्रेंड्स को भी इसका रस पिलाऊंगा।

कितने सारे दोस्त थे कैम्पबेल साहब के। पर उनमें यासीनखां कैम्पबेल का खास दोस्त था।

कैम्पबेल कहता—कसम से यासीन ! तू मेरा डियरेस्ट फ्रेंड है। थोड़ा *खजूर का रस पिला, यार !*

खजूर के रस में हल्का-सा एक नशा होता है। और उसके साथ ही हकीमी दवाई मिलने पर तो वह बिल्कुल 'वोडका' (रूसी शराब) बन जाता है। उसके बाद से कासिम बाजार की कोठी के और साहब लोगों ने भी भारतीय 'वोडका' पीना शुरू कर दिया। अंग्रेजों का कारोबार तब खूब चल रहा था। शोरे का, नमक का, तांत के कपड़ों का। कम्पनी की आय भी बढ़ रही थी—एजेन्सी के कमीशन के तौर पर काफी पैसा लूटा जा रहा था।

कैम्पबेल का नाम और यश भी बढ़ रहा था। बीमारी आखिर किसको नहीं होती ? कमी यदि है तो डाक्टरों की, न कि बीमारों की। उस समय भी डाक्टर

या वैद्य वहुत कम थे। सव कामचलाऊ थे। उनसे रोग ठीक हो भी नहीं सकता था। उसी समय की वात है। कासिम बाज़ार की कोठी में नवाव के दरवार से एक दिन एक आदमी आया।

—कौन हो तुम ?

—मैं मुर्शिदाबाद के नवाव के दरवार का मुंशी हूं। यहां के हकीम कैम्पवेल साहव को इत्तिला देने आया हूं।

—नवाव दरवार का खत है ?

मीर-मुंशी ने अपनी जेव से दरवारी मुहर लगी एक चिट्ठी निकालकर दी।

कलेट साहव ने चिट्ठी पढ़ी। कैम्पवेल साहव के नाम खत था। चेहल सतून में गुलज़ारी वाई वीमार है इसलिए चिकित्सा के लिए कैम्पवेल का वुलावा है। इसके लिए उसे उचित पारिश्रमिक स्वर्णमुद्राएं दी जाएंगी।

यासीनखां कैम्पवेल साहव का यार था। वोला—तेरी तो किस्मत खुल गई रे, कैम्पवेल !

कैम्पवेल वोला—क्यों ?

यासीन वोला—तुझे वहुत-सी मुहरें मिलेंगी। गुलज़ारी वाई अगर अच्छी हो गईं तो तुझे इनाम भी मिलेगा। और एक वार यदि नवाव की नज़र में पड़ गया तो हकीम की नौकरी भी मिल सकती है। फिर तो नवाव से तेरी दोस्ती हो जाएगी। हम जैसों को तव तो तू याद भी नहीं रखेगा।

कैम्पवेल हंसकर वोला—अजीव वात करता है तू यार। मुहरें और नौकरी पाकर क्या मैं शहनशाह वादशाह वन जाऊंगा। मेरे लिए तो यही ठीक है। तुम लोगों के साथ घूमता-फिरता हूं। मैं तो खुश हूं।

लेकिन कैम्पवेल नहीं जानता था कि अठारहवीं सदी के भाग्य के साथ उसे जड़ित होना ही पड़ेगा। इसीलिए दुनिया की तमाम जगहों को छोड़कर वह यहां इस वंगाल में आ पहुंचा था। वंगाल तो उस समय राजनीतिक षड्यन्त्र का गरम विस्तर था—वारूदखाना। केवल दियासलाई की एक तीली की ज़रूरत थी। शायद उस तीली के जलते ही वंगाल फटकर चूर-चूर हो जाता। पर कैम्पवेल को इतनी वातें जानने की फुर्सत कहां थी। वह तो खेतों और मैदानों में घूमता रहता। यासीन पेड़-पौधों से उसका परिचय करवाता। किस पेड़ का क्या गुण है, किस जड़ में कौन-सा पदार्थ है, कैम्पवेल यही सव जानने की कोशिश करता।

स्वयं चबाकर, चखकर परखता था।

कोठी में लौटकर ही उसने नई खबर सुनी। कलेट बोला—जाओ, नवाब के हरम में जाकर बाई साहिबा को देख आओ।

कैम्पबेल बोला—लेकिन बेगम साहिबा क्या मेरे सामने निकलेंगी ?

कालेट बोला—नहीं निकलेंगी तो तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है ? तुम मेडिसीन देकर चले आओ। तुम्हारी छुट्टी।

खैर, ऐसा ही हुआ।

कैम्पबेल साहब ने खबर भिजवा दी कि वह हरम में बीमार गुलज़ारी बाई को देखने के लिए आएगा।

चेहल सतून एक अजीब जगह थी। नवाब मुर्शिदकुलीखां की मृत्यु के बाद नवाब शुजाउद्दीन ने यह महल बनवाया था। नवाब शुजाउद्दीन के बाद सरफ़राजखां आए। उसके बाद नवाब अलीवर्दी खां। एक के बाद एक आए भी और चले भी गए। लोग उन्हें अब तक भूल भी गए थे।

लेकिन चेहल सतून अपना गौरव लिए तब भी टिका था। सुबह-शाम उस महल में नौबत बजती थी। मुर्शिदाबाद के लोग इसी आवाज़ से समय का अन्दाज़ा लगाते थे। शाम को जब नौबत बजती थी तब खेत में काम करता हुआ किसान भी समझ जाता था कि घर लौटने का वक्त हो गया है।

रात को दस बजे भी एक बार नौबत बजती थी। मुर्शिदाबाद की सड़क खाली हो जाती। चौक बाज़ार के फूल बेचने वाले भी घर वापस लौट जाते। जो ज्योतिषी रोज़ शाम को ज़मीन पर भाग्य-चक्र बनाकर मनुष्य का भविष्य बताता, वह भी अपना सामान बांधकर घर चला जाता। चारों तरफ़ एक सन्नाटा-सा छा जाता।

केवल बीच-बीच में कोतवाली का एक सिपाही गश्त पर रहता। किसके घर कोई चोर-डाकू सेंध काट रहा है या नहीं, उसपर नज़र रखता।

इन सबके अलावा जासूसों का उपद्रव भी इन दिनों कुछ अधिक बढ़ गया था। नवाब अलीवर्दी की मृत्यु के बाद से ही मुर्शिदाबाद के इर्द-गिर्द जासूसों का उपद्रव बढ़ रहा था। इसीलिए चारों तरफ़ होशियार रहने की हिदायत दे दी गई थी। टोपी वालों के जासूस नवाब के दरबार के अमीर-उमराव के मकानों

के आसपास घूमते रहते। खास तौर से महिमापुर की तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाता। एक तंजाम भी गुज़रता तो पहरेदार हांक देता—कौन है ?

तंजाम वाले वोलते—जगत सेठ जी की घरवाली।

वस तुरन्त छूट मिल जाती—'जाओ !'

उस दिन शाम को चेहल सतून के सामने एक तंजाम आकर रुका।

पहरेदार, फौजी, सिपाही चेहल सतून के सामने घोड़े पर सवार पहरा दे रहे थे। चेहल सतून के फाटक पर तंजाम के रुकते ही पहरेदार ने पूछा—कौन है ?

तंजाम वाले वोले—हकीम कैम्पवेल साहव।

—पंजा है ?

—जी हुजूर।

तंजाम वालों ने पंजे को निकालकर दिखाया।

फौजी सिपाही ने उसे जांचकर जाने की छूट दे दी—जाओ !

कहने के साथ-साथ लोहे का बड़ा फाटक खुल गया और तंजाम वाले हकीम साहव को लेकर अन्दर चले गए।

पश्चिम से आए वादल के इस एक टुकड़े को लोगों ने तुच्छ समझा था। परन्तु नवाब अलीवर्दीखां ने भांप लिया था कि यह वादल एक दिन भारत के सारे आकाश में छा जाएगा। इसीलिए अपने पोते मिर्ज़ा मुहम्मद को उन्होंने चेतावनी दे दी थी। नवाव ने कहा था—टोपी वाले वड़े चतुर होते हैं। एक वार जब उन्होंने कारोवार की सनद ली है तव वे केवल कारोवार करके ही चुप नहीं बैठेंगे।

मिर्ज़ापुर मुहम्मद को अलीवर्दीखां ने समझाया था कि कारोवार का मतलव ही राज्याधिकार है। वस्तुतः देश पर प्रभाव न फैलाने से कारोवार भी अच्छी तरह से नहीं जम सकता। व्यापार के लिए कभी-कभी राज्य पर और राजनीतिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना पड़ता है। और ज़रूरत पड़ने पर कम्पनी के लोग ऐसे हस्तक्षेप से चूकेंगे भी नहीं। मिर्ज़ा की मां तो पूरी तरह से अंग्रेज़ों के साथ कारोवार कर ही रही थी।

शोरे के व्यापार में मुनाफा भी अधिक था। रुपया मिर्ज़ा की मां अमीना वेगम का था और कारोवार अमीचन्द करता था। अंग्रेज़ अमीचन्द से शोरा खरीदते थे और मुनाफे की रकम अमीना वेगम की तिजोरी में जम रही थी।

दूसरी ओर अलीवर्दी की विधवा बेगम कुढ़ती और शर्मिन्दा हो रही थीं। लड़की अंग्रेजों के साथ कारोबार करे, यह नानी बेगम को पसन्द नहीं था। कहती थीं—यह काम अच्छा नहीं अमीना। मिर्ज़ा को नहीं चाहता कि तू इन गोरे बनियों के साथ लेन-देन करे। उनकी नज़रों के बगैर वह काम क्यों करती है? लेकिन अमीना के पास यह सब सुनने के लिए वक्त नहीं था। बल्कि बोलती—इसमें हर्ज ही क्या है। यह तो सिर्फ व्यापार है। बनियों से काफी पैसे आते हैं और बगैर पैसे के खानदानी इज्जत कैसे टिकेगी।

—लेकिन इतने पैसों की तुम्हें जरूरत ही क्या है? मेरा कलेजा है तू। अगर पैसों की इतनी ही जरूरत है तो मुझसे ले ले। मैं देती हूं तुझे रुपये।

—तुम्हारे पैसे मैं लूंगी, क्यों?

—तो फिर मिर्ज़ा के पैसे ले ले। मिर्ज़ा तेरा बेटा है। बेटे से पैसे लेने में कैसा संकोच?

यह सुनकर अमीना नाराज हो जाती है। चिल्लाकर बोलती—बेटा? बेटे की बात कह रही हो। लेकिन मिर्ज़ा मेरा बेटा है कहां?

—क्या बकती है। तेरा नहीं तो और किसका है? कह तो सही।

—मिर्ज़ा तुम्हारा बेटा है। बचपन से तुमने ही उसे अपने पास रखा है। तुम्हारे लाड़-प्यार से वह तुम्हारी औलाद बन गया है। मैं तो सिर्फ़ जने की मां हूं।

नानी बेगम दुःख से आंसू पोंछती थीं। बोलतीं—हाय! मुझे यह भी सुनना बदा था।

नहाते हैं, वेगम गदही के दूव से वदन साफ करती हैं—क्योंकि गदही के दूध से चमड़ी नरम रहती है। हरम की खूबसूरत औरतों को सूर्य भी नहीं देखने दिया जाता। सोने और हीरे-जवाहरात से वेगमें लदी रहती हैं। जेवरों से लदी जव वे चलती हैं तव मोर के नाच के समान आवाज होती है। वेगमों की जो दासियां होती हैं वे भी वड़ी खूबसूरत होती हैं। हरम में पुरुषों का प्रवेश तक नहीं हो सकता। चौकीदारी के लिए केवल खोजे ही रखे जाते हैं, जिन्हें पुरुषत्वहीन कर दिया जाता है। कालेट साहव ने कैम्पवेल साहव को ये सारी वातें समझा दी थीं।

कैम्पवेल साहव यह सुनकर हैरान हुए।

वोले—तो फिर मरीज़ को जांचूंगा कैसे ?

कालेट वोला—क्यों, पर्दे, के वाहर से।

—वाह भई। पर्दे की आड़ में मरीज़ दिखेगा कैसे ?

—दिखे या नहीं—तुम्हें इसी तरह से देखना पडेगा। यही कानून है।

कैम्पवेल वोला—अगर ऐसी वात है तो मैं मरीज़ की चिकित्सा नहीं कर सकता।

कलेट साहव घवराकर वोले—भूल से भी ऐसी गलती मत कर वैठना, तुम्हें तो जाना ही होगा। हेड-क्वार्टर से नवावों के साथ मेल-जोल वढ़ाने का आर्डर आया है। इसीलिए तो भारतीयों के साथ दोस्ती वढ़ाने में मैं भी तुम्हें इनकरेज करता हूं।

कैम्पवेल वोला—तुम्हारे कहने का अर्थ कहीं यह तो नहीं कि मैं भी जासूसी करने के लिए जाऊं ?

कलेट वोला—यही समझो। जासूसी करने में हर्ज भी क्या है ? हम यहां व्यापार करने आए हैं…और व्यापार के लिए ज़रूरी हो तो जासूसी भी करनी ही पड़ेगी। नवाव की ओर से भी तो हम लोगों के पीछे जासूस रखे गए हैं।

थोड़ा रुककर कलेट फिर वोला—तुम्हारा जिगरी यार वह यासीन भी जासूस हो सकता है। क्या भरोसा ? यह सुनकर कैम्पवेल चौंक उठा—नहीं, नहीं, यह सरासर झूठ है। यासीन कभी जासूस नहीं हो सकता।

कलेट वोला—चौंको मत वेल। राजनीति में सव कुछ पासिवल है।

यह सुनकर कैम्पवेल का मन उदास हो गया था। पर वह कुछ वोला नहीं। डाक्टरी करके, वीमारों को रोग-मुक्त करके उसे खुशी होती थी। किसके हृदय

में क्या छिपा है, यह वह सोच भी नहीं सकता था। यासीन को भी उसने कुछ नहीं कहा। चौदह वर्ष की उम्र में वह भारत आया था। अब तो २६ वर्ष का हो चुका था। इतने वर्षों में भी वह भारत को ठीक से समझ नहीं सका था। कहा लाहौर, कहा दिल्ली और कहा यह कासिम बाजार !

शाम हो चुकी थी। चेहल सतून के हर कमरे में रोशनी चमक रही थी। बेगमें साज-शृंगार में उलझी हुई थीं।

इसी बीच खोजा सरदार पिरालीखा की आवाज़ से मुमताज चौंक उठी। पूछा—कौन ? पिराली ?

—जी हां, बेगम साहिबा।

—क्या अर्ज़ करना चाहते हो ?

—हकीम साहब तशरीफ ला रहे हैं। इन्तज़ाम पूरा है।

मुमताज ने चट से अपनी पोशाक बदल डाली। बाहर के आदमी चेहल सतून में कभी-काम आते हैं। इसलिए जब भी किसीके आने का अन्दाज़ लगता है, मानो सारा चेहल सतून खुशी से मचल उठता है। हल्ला पहले से ही था कि कासिम बाजार की कोठी से एक साहब हकीम आने वाले हैं।

मुमताज बेगम पोशाक तो बदल ही चुकी थी, केवल जूती डालनी बाकी थी। बोली—तुम जाओ पिराली। मैं अभी आई।

पिराली सन्देशा देकर चला गया।

मखमल से सजे एक कमरे में पिराली ने साहब हकीम कैम्पबेल को बिठाया। कैम्पबेल चारों तरफ नज़र दौड़ा रहा था। लग रहा था, परिचित दुनिया से अलग किसी और दुनिया में वह पहुंच गया है। इसी जगह की बात इतने दिनों तक वह केवल सुनता ही आया है। क्लेट ने भी कई बार इस दुनिया का ज़िक्र किया था। कहीं से गाने-बजाने की आवाज आ रही थी तो कहीं से नमाज़ पढ़ने की।

कैम्पबेल कुछ समझ नहीं पाया कि वह क्या करे।

उसने पूछ ही लिया—गुलज़ारी बाई कहां है ?

पिरालीखां बोला—थोड़ा इन्तज़ार कीजिए हकीम साहब। गुलज़ारी बाई आ रही हैं। उधर से एक घण्टे की आवाज़ की तरह कुछ सुनाई पड़ा। इस आवाज़ को सुनते ही पिराली खां ने झट से पर्दे को खींच दिया। पर्दे को खींचते ही अन्दर की चीज़ें दिखाई पड़ीं। सच्ची चांदी यानी कि प्योर सिलवर का एक

पिंजड़ा था। और उस चमकते चांदी के पिंजड़े में एक खूबसूरत बिल्ली बैठी थी।

उसके ठीक पीछे एक पतली जाली का पर्दा था। वहां एक लड़की खड़ी थी बड़ी ही खूबसूरत। कैम्पवेल को लगा, इतनी सुन्दर लड़की इससे पहले उसने कभी देखी ही नहीं थी।

क्या उसे ही देखने के लिए उसे बुलाया गया है ?

क्या सचमुच ही यह सुन्दर-सी लड़की बीमार है ? क्या यही गुलजारी बाई है ?

पिरालीखां उस चांदी के पिंजड़े को खोलकर बिल्ली को निकालकर कैम्पवेल के सामने ले आया। कैम्पवेल वास्तव में ताज्जुब में पड़ गया था। बोला—यह बिल्ली लेकर मैं क्या करूंगा ?

खोजा सरकार पिरालीखां बोला—यही तो बीमार है हकीम साहब। इसी-का नाम गुलज़ारी बाई है।

कैम्पवेल साहब यह सुनकर मानो आकाश से धरती पर गिर पड़े। एक बीमार बिल्ली जिसका नाम गुलज़ारी बाई है उसी को देखने के लिए उसे बुलाया गया है। ऐसी विचित्र बात उसने जीवन में पहली बार सुनी थी।

कैम्पवेल ने आंखें उठाकर ऊपर की तरफ देखा। वह लड़की जाली के पर्दे की आड़ से अपलक उसीको देख रही थी।

कैम्पवेल ने फिर से पूछा—बीमार कौन है ? यह बिल्ली ?

—जी हां, बड़ी मीठी आवाज़ थी उसकी।

—गुलज़ारी बाई नानी बेगम की प्यारी बिल्ली है। आप किसी तरह इसका इलाज कीजिए।

कैम्पवेल बोला—देखिए, बेगम साहिबा ! मैं आदमी के रोगों को देखता हूं, बिल्ली की हकीमी तो कभी मैंने की नहीं।

मुमताज़ बोली—मुर्शिदाबाद के बहुत-से हकीम गुलज़ारी बाई को देख चुके हैं। लेकिन इसकी बीमारी ठीक नहीं हुई। नानी बेगम बड़ी चिन्तित हैं। आप मेहरबानी करके इसका इलाज कर दीजिए।

कैम्पवेल ने मन ही मन कुछ सोचा और पूछा—इसको हुआ क्या है ?

—बीमार है।

—यह तो मैं सुन चुका हूं। तकलीफ क्या है, यह बताइए।

मुमताज़ बोली—महीने-भर से यह कुछ खा नहीं रही है। यह काबुल की बिल्ली है। नवाब अलीवर्दी खां ने नानी बेगम साहिबा के लिए काबुल से इसे मंगवाया था। केवल दूध पीती है, मेवा खाती है। बहुत ही आरामतलब है।

साहब ने बिल्ली की तरफ देखा। बड़ी सुन्दर थी। सुनहरा बदन, छोटे-छोटे पैर। भूरे रंग की गोल-मटोल आंखें और मूछें। लम्बे-लम्बे रोयों से चेहरा ढका था।

कैम्पबेल बोला—कितने दिनों से बीमार है बेगम साहिबा ?

मुमताज़ मीठी आवाज़ में बोली—मैं बेगम साहिबा नहीं हूं, हकीम साहब, मैं तो नानी बेगम की खिदमतगार हूं।

सुनकर कैम्पबेल साहब हैरान हो गया। बात उसकी समझ में नहीं आई।

साहब ने पूछा—इसका क्या मतलब ?

मुमताज़ पिराली की तरफ देखकर बोली—पिराली, तुम थोड़ी देर तक के लिए बाहर जाकर ठहरो।

—जो हुक्म। कहकर पिराली बाहर चला गया।

मुमताज़ पर्दा हटाकर सामने आई। सम्मान में साहब उठकर खड़ा हुआ।

मुमताज़ बोली—तकलीफ की ज़रूरत नहीं, बैठिए! मैं बेगम साहिबा नहीं हूं।

—अगर बेगम साहिबा नहीं हैं तो आप कौन हैं ?

—मैंने तो कहा आपको कि मैं नानी बेगम साहिबा की खिदमतगार मुमताज़ हूं।

साहब सुनकर और भी ताज्जुब में पड़ गया।

मुमताज़ बोली—गुलज़ारी बाई को आप देख रहे हैं न ? असल में इसकी ख़िदमत करना ही मेरा काम है। इसी काम के लिए दरबार से मुझे तनख्वाह भी मिलती है। आप मेरी तरफ इस तरह मत देखिए, मेहरबानी करके गुलज़ारी बाई को देखिए।

साहब ने शर्म से आंखें तो नीची कर लीं, पर बोला—हमें माफ कीजिए।

मुमताज़ बोली—आप बुरा मत मानिए, हकीम साहब! टोपी वालों पर

चेहल सतून के नवाब बड़े नाराज़ रहते हैं। बेग्रदब होने पर आपको ही नुक्सान होगा। इसीलिए आपको सावधान किए देती हूं।

कैम्पबेल साहब को भारत आए बहुत दिन हो गए थे। बहुत-सी औरतों की चिकित्सा भी उन्होंने की थी। लेकिन आज की तरह जैसा व्यवहार उन्हें कभी नहीं मिला और इस तरह से बिल्ली की चिकित्सा के लिए भी किसीने अभी तक उन्हें नहीं बुलाया था।

—पिराली खां! अचानक मुमताज़ बेगम ने ऊंची आवाज़ से ख़्वाजा सरदार को बुलाया। पिराली ख़ां के आने के पहले ही मुमताज़ जाली के पर्दे के पीछे चली गई थी। पर्दे के उस पार से बोली—पिराली खां! हकीम साहब को बोलो जैसे भी हो गुलज़ारी बाई को ठीक करना ही होगा।

कैम्पबेल साहब सब कुछ समझ ही रहे थे। बोले—मैं कोई जादू तो जानता नहीं। इलाज करने की कोशिश ही कर सकता हूं।

—नहीं हकीम साहब, गुलज़ारी बाई अगर अच्छी नहीं हुई तो नानी बेगम के मन में बड़ी तकलीफ होगी। नानी बेगम की बड़ी प्यारी बिल्ली है यह।

—अच्छा, एक बात मैं पूछना चाहूंगा।

—पूछिए!

कैम्पबेल साहब बोले—इसकी जोड़ी है? माने इसका मर्द···बिल्ला है कोई?

मुमताज़ बोली—नहीं, आलीजाह के साथ गुलज़ारी बाई अकेली ही आई थी।

—लेकिन मुमताज़ बाई, अब तो इसकी एक जोड़ी चाहिए ही। जब यह आई थी, तब यह छोटी थी। अब बड़ी हो चुकी है। बिना जोड़ी के उसकी तबीयत तो खराब होगी ही।

मुमताज़ बोली—लेकिन इसकी क्या कोई दवा नहीं है?

कैम्पबेल साहब बोले—यह तो मादा बिल्ली है, मर्द-बिल्ले के बिना कैसे रहेगी?

—आप नानी बेगम साहिबा को यह बात कह दीजिए। लेकिन नानी बेगम साहिबा अब बिल्ला कहां से लाएंगी!

कैम्पबेल साहब बोले—बंगाल के मसनद के नवाब की ग्रैण्ड मदर अगर

इसका जुगाड़ नहीं कर सकेंगी तो मैं कहा से लाऊंगा, मुमताज बाई।

मुमताज बोली—क्यों आपकी फिरंगी कोठी में नहीं है?

—नहीं।

—कीमत जो भी लगे वह नानी बेगम साहिबा देंगी। आप कहीं से भी बन्दोबस्त कीजिए, हकीम साहब!

अचानक पिराली सरदार बातचीत के बीच में ही बोला—शहर का नरबिल्ला होने से चलेगा?

साहब बोले—कौन-सा शहर?

पिराली बोला—वही मुर्शिदाबाद बाज़ार का।

पर्दे के पीछे से मुमताज बोली—देसी बिलाव तो हमारे इस चेहल सतून में भी है हकीम साहब, लेकिन इसके साथ जोड़ी बधने नहीं दी जाती, क्योंकि नानी बेगम साहिबा की मनाही है।

कैम्पबेल साहब बोले—यह तो ठीक ही है, आदमी में भी तो ऐसा ही होता है।

मुमताज बोली—आप ज़रा कोशिश करके देखिए।

कैम्पबेल बोला—कोशिश करने पर भी पता नहीं मिले, न मिले। लेकिन जब आप कह रही हैं तो कोशिश ज़रूर करूंगा।

—और दवाई दे रहे हैं क्या?

—आप यदि कहें तो दवा ला सकता हूं।

—कब लाएंगे?

—जिस दिन आप तंजाम का इन्तजाम कर देंगी।

—तो फिर नानी बेगम साहिबा को कहकर जुम्मे के दिन तंजाम भेजने की व्यवस्था कर दूंगी।

कैम्पबेल साहब चेहल सतून के बाहर आकर पालकी में जा बैठे और उसके थोड़ी देर बाद घोड़े पर सवार होकर कासिम बाज़ार की कोठी की तरफ चल पड़े।

सभी लोग कैम्पबेल की राह देख रहे थे। कासिम बाज़ार की कोठी का कोई भी साहब बाहर नहीं निकला था। ज़रूरी डिस्पैच लेकर छोटे साहब की पा

जाना था। परन्तु कलेट बोला—थोड़ी देर और रुक जाओ स्मिथ। बेल लौटकर आता ही होगा। वह क्या कहता है, सुनकर जाओ।

स्मिथ बोला—लेकिन डिस्पैच पहुंचने में देर होने पर फोर्ट विलियम का कैप्टन बड़ा नाराज होता है।

—होने दो। डिप्लोमैटिक मामलों की खबर तो भेजनी ही चाहिए।

—नेक्स्ट वीक भेजने से नहीं चलेगा ?

कलेट बोला—कैप्टन तब पूछ सकता है कि जरूरी खबर देर से क्यों भेजी गई ? क्योंकि कैप्टन तो फिर कम्पनी के हेडआफिस में उसी तरह का डिस्पैच भेजेगा।

इस तरह का डिस्पैच ही कम्पनी का असल कारोबार था। चारों तरफ की रिपोर्ट लाकर, फिर छोटी हुई फाइनल रिपोर्ट इंग्लैण्ड के हेडआफिस में भेजनी पड़ती थी। इस तरह की रिपोर्ट जाने में ६ महीने लग जाते थे। और उसका उत्तर आने में भी ६ महीने लग जाते थे। तब तक देश का हाल बहुत कुछ बदल जाता था।

घोड़े से उतरकर कैम्पबेल कोठी के दफ्तर के अन्दर आया। उसे देखते ही सबों ने एकसाथ ही पूछा—क्या हुआ ? क्या खबर है बेल ?

बेल बोला—अरे भई। फार नथिंग मुझे इतना ट्रबल दिया। किसीको कुछ भी नहीं हुआ।

—किसीको कुछ भी नहीं हुआ ? क्या मतलब ? तुम्हें फीस मिली है ?

—हां, वह तो मिली ही है। कहकर पाकिट से उसने सोने की मुहर निकालकर दिखाई। और कहा—मीर मुंशी ने खज़ाने से लाकर यह मुझे दी और बोला—फिर बुलावा देंगे। मुझे फिर चेहल सतून जाना पड़ेगा।

—बीमार कौन है ? कोई बेगम ?

—गुलज़ारी बाई बीमार है।

—नवाब की कोई बेगम है क्या ?

बेल बोला—दुर ! नवाब की बेगम होती तो क्या एक मुहर फीस मिलती।

—तो फिर चेहल सतून की कोई खूबसूरत बांदी ?

—वो भी नहीं। नवाब के ग्रैण्ड मदर की एक प्यारी बिल्ली-कैट है।

—बिल्ली ? कैट !

—हा-हा। हैरान क्यों हो रहे हैं! उसी बिल्ली के प्यार का नाम है—गुलज़ारी बाई।

क्लेट बिल्कुल निराश हो गया। सोचा था जब बेगम की बीमारी के लिए कैम्पबेल को बुलाया गया है, तब बेगम को देखने के लिए चेहल सतून के अन्दर उसे जाना पड़ेगा। और उसी बहाने नवाब के साथ भी मुलाकात होने की सम्भावना थी। और यदि नवाब से भेंट न भी हो सके तो कम-से-कम नवाब के किसी अमीर-उमराव से भेंट हो सकती थी। बातचीत भी हो सकती थी और इसी सिलसिले में यदि कैम्पबेल कोई खबर लाता तो कैप्टन को सूचित किया जाता।

स्मिथ तब भी खड़ा ही था।

क्लेट बोला—तुम खड़े क्यों हो? तुम स्टार्ट हो जाओ। और सुनो, कैप्टन को बिल्ली की खबर देने की कोई जरूरत नहीं।

वास्तव में चेहल सतून में बिल्ली की बीमारी को लेकर किसीको सर-दर्द होने की कोई बात नहीं थी। सर-दर्द यदि था तो सिर्फ नानी बेगम साहिबा को ही। नानी बेगम अनमनी-सी रहने लगी थी। पहले अपने पोते मिर्ज़ा के लिए चिन्तित रहती थी। क्योंकि चेहल सतून के अन्दर और बाहर दोनों तरफ मिर्ज़ा के दुश्मन थे। भक्की आदमी। गुस्से में आकर तनाव में कुछ कर डाला तो सारा चेहल सतून थरथरा जाएगा।

अपने-अपने महलों में सभी मस्ती कर रहे थे, लेकिन नानी बेगम के मन में अशान्ति की आंधी चल रही थी। धीरे-धीरे कुरान शरीफ खोलकर पढ़ने बैठ गईं। लेकिन उसमें मन नहीं लगा। महल में टहलते-टहलते पोते के महल में जा पहुंची। वहां लुत्फा चुपचाप सोई पड़ी थी। बत्ती जल रही थी। नानी बेगम को वह देख नहीं पाई। वहां से नानी बेगम बेटी के महल में पहुंची।

—बन्दगी नानी बेगम साहिबा!

आवाज खोजा सरदार पिराली खां की थी। नानी बेगम ने मुड़कर देखा। पूछा—क्या खबर है पिराली? खैरियत तो है न?

—जी नानी बेगम साहिबा। सब खैरियत है।

—गुलज़ारी बाई की तबियत कैसी है?

पिराली खां बोला—कासिम बाज़ार की कोठी से फिरंगी हकीम साहब

आए थे। इलाज कर गए हैं।

—दवा दे गए हैं ?

पिराली वोला—नहीं अगले सप्ताह हकीम जी दवा लेकर खुद आएंगे।

—मुमताज़ कहां है ?

—हुज़ूर, वीमार-महल में।

नानी वेगम साहिवा चल पड़ीं। फिर न जाने क्या सोचकर वीमार महल की तरफ मुड़ गई। वोलीं—अव तुम जा सकते हो पिराली खां !

वीमार-महल में वीमार लोग रहते थे। चेहल सतून में कोई भी वीमार होता तो उसे वीमार-महल में भेज दिया जाता था। इसके लिए मीर मुंशी के दफ्तर से पंजा निकाला जाता था। हकीम यदि इलाज नहीं कर पाता था तव चौक वाज़ार से वैद्य को वुलाया जाता था। चौक वाज़ार वैद्यों का अड्डा था। अगर वैद्यों के इलाज से भी रोग ठीक नहीं हुआ तव फिरंगी हकीम को वुलाया जाता था। कासिम वाज़ार की कोठी फिरंगियों का अड्डा थी इसीलिए गुलज़ारो वाई के लिए अन्त में कासिम वाज़ार की कोठी में फिरंगी हकीम को वुलाने के लिए मीर मुंशी को भेजा गया था।

चेहल सतून के गलियारे से होकर नानी साहिवा वीमार-महल की ओर चली गई।

यह एक विचित्र दुनिया थी। यह चेहल सतून। कौन कव, कहां जा रहा है, किससे दोस्ती कर रहा है, किससे लड़ाई हो रही है—इस सव का लेखा-जोखा रखना किसीके लिए सम्भव नहीं था। पर कभी नानी वेगम साहिवा इसकी देख-भाल अकेली ही करती थीं। अव वह थक चुकी थीं। 'जैसा चल रहा है चलने दो!' अल्लाह का नाम लेकर वाकी दिन गुज़र जाएं, वस इतनी ही तमन्ना वाकी रह गई थी—नानी वेगम साहिवा की।

—मुमताज़ !

नानी वेगम साहिवा की आवाज़ सुनकर मुमताज़ एकदम उठ वैठी। कैम्पवेल साहव के जाने के वाद से ही वह अजीव-सी थकावट महसूस कर रही थी। मुमताज़ भी कभी किसी अमीर घराने की वीवी थी। और आज ? आज वह चेहल सतून में नानी वेगम साहिवा की खिदमतगार थी।

—नहीं !

—अगर तेरा कोई नहीं तो इस दुनिया में तू इतना रूप लेकर क्यों पैदा हुई ?

मुमताज़ इसका क्या जवाब दे सकती थी ?

पहले-पहल नानी बेगम ने मुमताज़ को यहां-वहां छुपाकर रखा। साथ घूमतीं और रात को अपने पास ही सुलातीं। चेहल सतून के अन्दर भी नानी बेगम उसे कभी अकेला नहीं छोड़तीं। उन्होंने खोजा सरदार को हुक्म दे रखा था—'मुमताज़ पर नज़र रखना पिराली खां।'

—जी बेगम साहिबा ! पिराली खां ने अदब से कहा था। नानी बेगम ने और भी हिदायतें दी थीं—बाहर से यदि कोई आए तो ख्याल रखना कि मुमताज़ पर उसकी नज़र न पड़े।

—जी !

हर बात में पिराली खां का यही एक उत्तर होता। उस समय तक नानी बेगम ने मुमताज़ के ज़िम्मे कोई काम नहीं सौंपा था। केवल मस्जिद में साथ ले जातीं और कभी-कभी कुरान पढ़कर सुनाने को कहतीं।

कभी-कभी नानी बेगम पूछतीं—यह सब काम तुम्हें पसन्द है मुमताज़ !

मुमताज़ कहती—हां बेगम साहिबा !

—अगर अच्छा न लगे तो मुझे बताने में झिझकना नहीं। और फिर बड़े प्यार से पूछतीं—अकेले रहने में तुझे बहुत खराब लगता होगा ! है न मुमताज़ ?

—नहीं बेगम साहिबा !

—नहीं रे। मैं जानती हूं। खराब तो तुझे लगता ही है। जिसका आदमी मर जाए उसे चैन कहां ? वह खुश रह भी कैसे सकती है ? इसी तरह से नानी बेगम मुमताज़ को समझातीं। फिर अचानक एक दिन वह पूछ बैठीं—तू शादी करेगी मुमताज़ ? मुमताज़ ने आंखें नीचे कर ली थीं। कोई जवाब नहीं दिया था। नानी बेगम ने फिर से पूछा—सच-सच बता, शादी करेगी ?

—नहीं ! मुमताज़ ने साफ कहा।

—इसमें शर्म की कोई बात नहीं। और मुझसे संकोच भी मत कर। अगर तू किसीको चाहती है तो भी बता दे। इसी चेहल सतून में मौलवी को बुलवा-

कर उसके साथ तेरी शादी कर दूंगी।

मुमताज बोली—नहीं बेगम साहिबा, मैं शादी नहीं करूंगी।

अन्त में एक दिन मिर्ज़ा ने ही बात उठाई। बोला—नानी बेगम! शफीउल्ला मुमताज़ से निकाह करना चाहता है।

—कौन शफीउल्ला?

—मेरा यार।

—तेरे यार ने मुमताज को देखा कैसे?

—देखा है नानी जी! जब अमीर खुसरो ज़िन्दा था तब उसने मुमताज़ को देखा और अपना दिल भी खराब कर लिया था। पर अब तो आपकी मेहरबानी पर है।

ये सब बातें बहुत पुरानी थी। मुमताज़ को फिर उन दिनों की याद आ गई, क्योंकि अचानक ही उस दिन नानी साहिबा ने एक बार पूछा था—तू शादी करेगी?

—नहीं नानी जी! मैंने तो आपको कह ही दिया है।

—लड़कियां क्या अपनी जुबान खोलकर अपनी शादी की बात करती हैं?

मुमताज बोली—ये सब बातें रहने दीजिए, नानी बेगम! मैं शादी नहीं करूंगी।

—अगर शादी नहीं करेगी तो क्या तमाम ज़िन्दगी इसी चेहल सतून में काटेगी?

—इसमें हर्ज ही क्या है?

—लेकिन मैं ज़िन्दा रहकर कब तक तेरा साथ दूंगी? नानी बेगम का गला भर आता।

मुमताज भी बेचैन होकर बोलती—आप जहां भी रहेंगी नानी जी, मैं भी साथ-साथ रहूंगी। आपको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊंगी।

नानी बेगम साहिबा स्नेह से मुमताज का सिर छाती से लगा लेती और प्यार भरी थपकी लगाकर बोलती—यह बात नहीं है बेटी! मेरे इन्तकाल का समय भी तो आ गया है। दुनिया में चिरकाल जीने के लिए तो कोई आता नहीं, बेटी मेरे मरने के बाद तेरा क्या होगा? तूने कभी सोचा भी है?

मुमताज नानी बेगम की गोद में अपना सर छुपाती—उसकी आंखें आंसुओं

से डबडबा आतीं—आप नहीं रहेंगी तो मैं भी नहीं रहूंगी नानी बेगम ! मुझे जीने की तमन्ना नहीं।

नानी बेगम बोलतीं—मेरी पगली बेटी ! दुनियादारी समझती ही नहीं। दुनियादारी बिल्कुल अलग चीज़ है। यहां तेरी खातिर और खिदमत कोई नहीं करेगा। दुनिया तेरा हक भी तुझसे छीन लेगी, लूट लेगी; उसे कोई नहीं रोक सकता। दिल्ली के बादशाह से लेकर मुसाफिर तक सबको इस हक को चुकाना ही पड़ता है, झुकना ही पड़ता है। इससे बचकर तू निकल नहीं सकती।

नानी बेगम की बातें मुमताज जी लगाकर सुनती और अकेले में बैठकर रोती। वह सोचती—नानी बेगम के सहारे के बगैर लोग उसे नोच-नोचकर खा जाएंगे। उसे लगता जैसे सभी उसे निगलने के लिए दौड़ रहे हैं।

कभी-कभी चेहल सतून के अन्दर रहकर भी भय और चिन्ता से मुमताज़ कांप-सी जाती। एक अनजान डर उसे बेचैन किए रखता मानो यहा सभी उसके दुश्मन थे। इस चेहल सतून में और भी बहुत-सी बेगमें थीं—पेशमन बेगम, मरियम बेगम, गुलशन बेगम, बब्बू बेगम।

पेशमन बेगम ने एक दिन मुमताज़ से पूछा—तुम कौन हो ? नई मालूम होती हो।

—नहीं।

—नाम क्या है।

—मुमताज़ बाई।

—किस मुल्क की हो ?

—मुर्शिदाबाद।

पेशमन बेगम ने हैरान होकर पूछा था—मुर्शिदाबाद ? मुर्शिदाबाद से यह कैसे पहुंच गई। कौन तुम्हें यहां लाया ? नवाब के लोग ?

मुमताज़ ने कहा—नहीं मुझे यहां नानी बेगम साहिबा लाईं।

—तुम्हारा पता नानी बेगम साहिबा को कैसे मिला ? उन्हें तुमसे क्य मतलब ?

मुमताज़ ने धीरे से कहा—मेरा आदमी अमीर खुसरो…

—तो तुम अमीर खुसरो की बीवी हो ? यहां क्यों आई बहन ?

यही एक प्रश्न सभी करते। मुमताज़ थक जाती। उदास हो जाती।

चेहल सतून में सब चीजों का बन्दोबस्त था। शराब, तेज़ाब, बांदियां, खोजे सभी कुछ। फिर भी मन खाली-खाली-सा लगता।

शाम को इसी चेहल सतून का रंग-रूप बदल जाता। बाहर जब नौबत बजती अन्दर इत्र और शराब की बाढ़ आ जाती। हर कमरा रोशनी से जगमगा उठता। सुगन्धित धूप की महक से बेगम महल खुशबू से भर जाता। संगीत के सुरों और नृत्य के छन्दों की लहरें बहुत दूर तक सुनाई पड़ती।

इस बेगम महल में जो औरतें बूढ़ी हो गई थीं, पुरानी पड़ चुकी थीं वे पड़ी-पड़ी तम्बाकू पीतीं। ये बेगमें नवाब शुजाउद्दीन के समय की थीं। कभी ये भी बड़ी खूबसूरत रही होंगी। अपनी खूबसूरती में नवाबों तथा अमीर-उमराव को अपनी ओढ़नी तले दबाए रखतीं। लेकिन अब उनके दिन ढल चुके थे चमड़ी ढीली पड़ चुकी थी। गठिया की दवाई लेकर चल-फिर रही थीं। सीधी तरह चल भी नहीं सकती थीं, पर नशा नहीं छोड़ सकी थीं। बांदियां उनके पैरों पर हाथ फेरतीं और खोजा लोग चांदी के हुक्के सजाकर उनके सामने रखते। पड़ी-पड़ी धीमी गति से वे अपना जीवन काट रही थीं। पर कहीं से कोई आवाज सुनतीं तो चौंककर अपनी सामर्थ्य भूलकर बैठने की कोशिश करतीं। पूछतीं—कौन है? मुमताज़ डरी-डरी-सी बोलती—मैं!

—मैं कौन? क्या नाम? कहां से आई हो? और मुमताज जब अपनी कहानी सुनाती तब जीवन में मार खाई ये औरतें कहतीं—क्यों आई बेटी? यहां क्यों आई?

सभी की जुबान में एक ही शब्द, एक ही बात। एक दिन इन लोगों ने भी जीवन में बहुत कुछ पाया होगा, कितनी महफिलें रचाई होंगी, कितने मजे लूटे होंगे। पर आज ये जिन्दगी के किनारे पहुंचकर उन बातों को भुला बैठी थीं। जीवन की मार से ये इतनी ही पीड़ित, जर्जरित थीं।

नानी बेगम साहिबा एक दिन बोलीं—मुमताज बेटी। तू उधर मत जाया कर। तू मेरी गुलज़ारी बाई को देख। उसकी खिदमत कर। कुछ न सही—एक काम तो है और काम में लगी रहेगी तो जी भी ठीक रहेगा। गुलजारी बाई नानी बेगम की प्यारी बिल्ली जो ठहरी।

चेहल सतून की बड़ी शौकीन बिल्ली थी—गुलजारी बाई। उसके लिए दिल्ली से इत्र मंगवाया जाता था। नवाब अलीवर्दी खां जब तक जीवित थे,

खाना खाने के पहले गुलजारी बाई को पास बुलाते थे। सुनहरे मुलायम ऊन का गोला थी वह। नवाब खाना खाते—गुलज़ारी पास बैठी रहती। नवाब गुलज़ारी से बातें करते। नवाब की एक ओर बेगम साहिबा बैठतीं और दूसरी तरफ गुलज़ारी बाई।

गुलज़ारी से नवाब पूछते—इतना गुस्सा क्यों रे गुलजारी ? किसपर नाराज़ है ?

नानी बेगम कहतीं—आलीजाह पर गुस्सा है गुलजारी।

नवाब हंसकर कहते—क्यों ? मेरा क्या कसूर ?

—वाह ! आपने जो दिन-भर उससे कोई बात नहीं की।

—बिल्कुल ठीक कह रही हो बेगम।

लेकिन गुलज़ारी एक असहाय बेचारी बिल्ली ठहरी। वह कैसे समझ सकती थी कि शासन चलाना कितना खतरनाक काम है। दुनियादारी गुलज़ारी बाई की समझ के बाहर की चीज़ थी। चारों तरफ दुश्मनों से घिरे हुए नवाब को खाने-पीने का जो थोड़ा-बहुत समय मिल जाता यही तो खुदा की मेहरबानी थी। और दुश्मन सिर्फ बाहर के ही तो नहीं थे। घर के अन्दर भी दुश्मनी के बीज पनप रहे थे।

इस बात के बाद तो बहुत दिन बीत गए। नवाब भी चल बसे थे। नानी बेगम बदल चुकी थीं। चेहल सतून भी अब पहले जैसा नहीं रहा था, यद्यपि बाहर के ठाट-बाट कायम थे और अन्दर का खोखलापन सामने नहीं आया था। पहले की तरह सुबह-शाम दरवाज़े पर नौबत बजती और महल के भीतर पिराली खां अपने खोजा सरदारों के दल के साथ उसी तरह पहरे पर जुटा रहता।

परन्तु मिर्ज़ा मुहम्मद के नवाब होने के बाद से महल के अन्दर का चेहरा बदल गया था।

मुमताज़ सब कुछ समझती थी।

नानी बेगम के चेहरे से सब कुछ झलकता था।

कई बार रात को नानी बेगम के महल में जाकर मुमताज़ ने देखा कि उनकी बांदी ज़ुबेदा सोई पड़ी है और नानी बेगम रोशनी के आगे सर झुकाकर कुरान पढ़ रही हैं। मुमताज़ आहिस्ते से अपने महल में लौट आती और बिस्तर पर लुढ़क जाती।

मब कुछ ऐसे ही चल रहा था। मुश्किल गुलज़ारी बाई की बीमारी को लेकर हुई।

एक दिन मुमताज़ सीधी नानी बेगम के कमरे में चली गई।

—क्यों री बेटी ? कुछ कहना है ?

—गुलज़ारी बाई बीमार है नानी जी।

—कहा है ? देखू तो।

नानी बेगम उठकर गुलज़ारी बाई के महल की तरफ चली। मुमताज़ पीछे-पीछे चल रही थी। नानी बेगम ने पूछा—क्या हुआ गुलज़ारी को ?

—कुछ खा नहीं रही है नानी जी। गोश्त भी नहीं।

—मेवा ? सूखा मेवा ?

—हर तरह की कोशिश करके हार गई हूं पर दात तले कुछ रखती ही नहीं।

—चल, देखती हूं।

नानी बेगम जब पहुची तब गुलज़ारी बाई अपने महल में चादी के पिंजडे में बैठी-बैठी ऊंघ रही थी।

नानी बेगम ने प्यार से पुकारा—गुलज़ारी।

परिचित आवाज़ सुनकर गर्दन ऊची करके देखा गुलज़ारी बाई ने।

नानी बेगम ने उसे गोद में उठा लिया और प्यार से पूछा—क्या हुआ है तुझे गुलज़ारी ? क्या तकलीफ है ?

नानी बेगम उसे बहुत देर तक प्यार करती रही। लेकिन गुलज़ारी बाई का मन नहीं भरा। नानी बेगम उसे फिर पिंजडे मे वापस रखती हुई पिराली खा से बोली—मीर मुंशी को खबर करो कि वह हकीम साहब को इत्तिला कर दे कि वह चेहल सतून मे आकर गुलज़ारी का इलाज करे।

इसके बाद हकीम साहब आए, चौक बाजार से काफिर वैद्य आया और मीर मुंशी से फीस के तौर पर काफी मोटी रकम भी ले गया, पर उसकी दवाई से भी ठीक नही हुई। दिन-पर-दिन उसकी हालत बिगडती ही गई। वह मुरझा गई।

अन्त में कासिम बाजार की कोठी से फिरंगी हकीम को बुलाया गया।

नानी बेगम साहिबा ने आकर पुकारा—मुमताज़ !

—जी, नानी जी !

—फिरंगी हकीम तशरीफ लाए थे ?

—जी, नानी जी !

—दवाई दे गए ?

—दवाई भेज देंगे। ऐसा कहकर गए हैं।

—गुलज़ारी को देखकर क्या कहा फिरंगी हकीम ने ?

मुमताज़ की समझ में नहीं आया कि वह क्या जवाब दे।

नानी बेगम ने फिर पूछा—गुलज़ारी अच्छी तो हो जाएगी ? क्या कहा साहब ने ?

मुमताज़ ने बताया—जी, नानी जी ! साहब बोल गए हैं—इसकी एक जोड़ी चाहिए।

—काहे की जोड़ी ?

—एक मरद बिल्ला मगवाना पड़ेगा।

नानी बेगम बोलीं—चेहल सतून में मरद बिल्ले तो बहुत-से हैं, मुर्शिदाबाद बाज़ार में भी हैं, मोतीझील में भी है।

मुमताज़ बोली—उनसे काम नहीं चलेगा नानी बेगम। हकीम साहब बोल गए हैं कि खास काबुल मुल्क से इसी जात के बिल्ले को लाना पड़ेगा।

—उसे कौन लाएगा ?

—मैं कैसे बताऊं, नानी जी ?

—नानी बेगम भी नहीं समझ पाई कि मरद बिल्ला वहां से कौन लाएगा दिल्ली के वकील साहब को खबर देने से शायद काबुल से वह एक बिल्ला मंगवा दें—नानी बेगम चिन्ता में पड़ गई और सोचती-सोचती अनमनी-सी अपने महल की ओर चल पड़ीं।

लेकिन कैम्पबेल साहब के आने के बाद से ही मुमताज़ को सब कुछ अच्छा लगने लगा था। यहां तक कि चेहल सतून भी बदला-बदला लग रहा था। बार-बार उसे लग रहा था—यदि साहब फिर से एक बार आ जाए तो बड़ा अच्छा होगा।

ऐसा ही नानी बेगम से मैं जाकर कहूंगी—यह सोचकर मुमताज नानी बेगम के महल में गई।

नानी बेगम ने बेवक्त मुमताज को देखकर पूछा—क्यों री ? कुछ कहना है ?

चाहकर भी मुमताज कुछ नही बोल सकी।

—गुलजारी आज कैसी है ?

—अच्छी नही है, नानी जी…

—तू उदास मत हो मुमताज। मैं गुलजारी के लिए और नही सोच सकूंगी। मैं अकेली आखिर किस-किस के लिए सोचू ? मिर्जा के लिए सोचू ? घसीटी के लिए सोचू ? और फिर मेरे लिए ही कौन सोचता है ?

वास्तव में नानी बेगम की तीनो लड़कियां मानो उसकी दुश्मन थी। ताज्जुब तो इस बात का था कि मिर्जा का नवाब बनना ही उसकी अपनी ही मां को पसन्द नही था।

—नानी जी !

—बोल और क्या बोलना है ?

—फिरंगी हकीम को एक बार और बुलवाऊं नानी जी ?

—इतनी-सी बात है। बुला ! पिराली को बोल दे। वह मीर मुंशीको खबर कर देगा। पर अपनी बात कहकर मुमताज शर्म से संकुचित हो गई। मानो फिरंगी साहब से उसकी आखें चार हो गई हो। आखों के सामने उसका चेहरा स्पष्ट होता गया मानो उसी दिन की तरह साहब उसे निष्पलक देख रहा हो—सर्वांग दर्शन।

—नानी जी !

नानी बेगम हैरान हुई। कुरान को एक तरफ सरकाकर मुमताज के नज़दीक आई और चिबुक पकड़कर उसके चेहरे को ऊपर उठाती हुई बोली—तुझे क्या हुआ री ? तू भी बीमार है क्या ? चेहरा और आंखें इतनी लाल क्यों हैं।

मुमताज ने नानी बेगम की छाती मे अपना मुह छिपा लिया।

जितनी बातें मन मे थी मानो आसू बनकर नानी बेगम की छाती पर बह गई।

—तुझे भी बुखार है ?

नानी बेगम ने सर पर हाथ रखा। मुमताज़ का बदन आग की तरह तप रहा था।

—तू भी बीमार पड़ गई। अब मेरी गुलजारी को कौन देखेगा ?

नानी बेगम की छाती में मुंह छिपाकर ही मुमताज़ बोली—मुझे बुखार नहीं हुआ है नानी बेगम ! बुखार नहीं है।

—कैसे कह कह रही है कि बुखार नहीं है। मैं जो देख रही हूं कि बदन जल रहा है। मुमताज़ को पकड़कर बीमार महल की ओर चलते-चलते नानी बेगम बोलीं—तू भी मुझे तकलीफ दे रही है। कोई भी मुझे शान्ति नहीं दे सकता। लड़की, दामाद, पोता, तुम सबों ने मिलकर मुझे बेचैन करने की ठान ली है। बीमार महल में पहुंचकर नानी साहिबा ने मुमताज़ को एक कमरे में बिस्तर पर सुला दिया और पिराली खां को बुलाकर कहा—पिराली, चेहल सतून के हकीम साहब को बुला लाओ।

—जो हुक्म बेगम साहिबा ! कहकर पिराली खां जाने लगा।

लेकिन मुमताज़ बोली—नहीं नानी जी, मैं आपके पैर पड़ती हूं। हकीम साहब को न बुलवाइए।

नानी बेगम को गुस्सा आ गया। बोलीं—हकीम नहीं आएगा तो तेरी बीमारी ठीक कैसे होगी ?

—नानी जी, उसी फिरंगी हकीम को बुलवाइए। वही कासिम बाज़ार कोठी के साहब हकीम को। वह बहुत अच्छे हकीम हैं, मेरे रोग की जांच वह ही ठीक से कर पाएंगे···मुमताज़ की आवाज़ में मिन्नत थी।

नानी बेगम हैरान हुई। पूछा—तू कैसे जानती है ?

—मैं जानती हूं नानी जी ! फिरंगी लोग अधिक जानते हैं।

—ठीक है। अगर ऐसी बात है तो उसी फिरंगी को बुलवाती हूं।

पिराली खां हुक्म लेकर सलाम बजाकर चला गया।

दोनों एक विचित्र तरह के सम्पर्क में बंध गए। किसी सुदूर टापू से बनज़ारे की तरह अनजान को लक्ष्य बनाकर निकल पड़ा था—एक चौदह साल का लड़का और फिर कितनी जगह, कितने देश, कितने घाटों का पानी पीकर इस बंगाल

में अटक गया, बीस साल का यह कैम्पवेल साहव।

चेहल सतून से बुलाहट आती। साहव तजाम में वैठकर वहां आता—यह बात चेहल सतून के सभी लोग जान गए थे। पर यह क्रम चलेगा, चलता रहेगा, यह साहव ही जानता था, मुमताज़ ही जानती थी।

साहव के आते ही मुमताज़ बीमार महल में उठ वैठती।

साहव पूछता—कैसी हो? हाऊ आर यू? बहुत बार आने-जाने से पहले की वह झिझक अब साहव में नहीं रही।

मुमताज़ बोलती—साहव, मेरी वात तुमने और किसीको तो नहीं कही?

कैम्पवेल जान गया था कि चेहल सतून की बात वाहर के लोगों को नहीं कहनी चाहिए; फिर भी अनजान की तरह बोला—किसे कहूंगा?

मुमताज़ बोली—पिछली वार तुमने कहा था कि किसीको बताया है।

—वह तो यासीन है, मेरा दोस्त।

—क्या कहा था उससे? मुमताज़ ने पूछा।

—कहा था तुम बहुत ब्यूटीफ़ुल हो।

—ब्यूटीफ़ुल माने?

साहव बोला—ब्यूटीफ़ुल माने नहीं जानती? ब्यूटीफ़ुल माने सुन्दर, ख़ूबसूरत।

—जानते हो साहव, तुम मुझसे भी ज़्यादा सुन्दर हो।

दोनों साथ-साथ हंसते।

यासीन ने तो पहले ही दिन पूछ लिया था—देखने में कैसी है यार?

—बहुत ब्यूटीफ़ुल!

—तुझे क्यों बुलाया था? विल्ली का रोग तू ठीक कर सकता है? तूने ऐसा कहा?

—कहा तो था कि कर सकूंगा।

—कैसे करेगा? विल्ली के रोग की दवा तुझे मालूम है?

केवल यासीन ही क्यों, कासिम बाजार की कोठी के साहव भी बोले—तुम कह तो आए, पर विल्ली की बीमारी ठीक तो कर सकोगे न वेल?

कैम्पवेल को तो अपने पर ही सन्देह था। वह क्या जवाब देता।। ख़ैर, रोग ठीक हो चाहे नहीं—इसी गुलज़ारी वाई की बीमारी के वहाने मुमताज़ से तो भेंट

—हरम की बेगम को जब धुन सवार हुई है तब तो चाहिए ही। लेकिन ऐसे-वैसे से काम नहीं बनने का, खास काबुल का बिल्ला चाहिए।

वास्तव में कैम्पबेल जी-जान से बिल्ला ढूंढ़ रहा था। बीच में एक बार कलकत्ता भी गया था। कलकत्ता में अमीचन्द से भी मिला। अमीचन्द ने कैम्पबेल साहब को देखकर अचरज से पूछा—क्यों साहब, कासिम बाजार अच्छा नहीं लगा क्या? कलकत्ता वापस आना चाहते हो?

कैम्पबेल बोला—मैं एक काम से आया हूं अमीचन्द, मुझे हैल्प कर सकोगे?

—कहिए। क्या मदद कर सकता हूं?

—एक मरद काबुली बिल्ले का मुझे जुगाड़ कर दो।

—क्या कह रहे हैं? बिल्ला लेकर क्या करेंगे?

—मेरे लिए नहीं। चेहल सतून की हरम की बेगम के लिए।

अमीचन्द बोला—मैं मंगवाकर दे सकता हूं। मेरा एजेंट वहां है। पर आने में देर लगेगी।

—कितनी देर?

—तीन महीने तो लग ही जाएंगे।

—इतनी देर से तो काम नहीं बनेगा। मुझे और जल्दी चाहिए।

अमीचन्द को शक हो गया। बोला—तुम्हें किस बात की जल्दी है साहब?

—मैं हरम में एक मरीज का इलाज कर रहा हूं।

—मरीज कौन? कोई बेगम?

—बेगम नहीं। गुलजारी बाई।

—ओ···नानी बेगम की बिल्ली? अरे तुम्हें पहले कहना चाहिए था। तो तुम्हें इसीलिए जल्दी लगी है। मैं जल्द-से-जल्द मंगवाने की कोशिश करूंगा। कितने रुपये दे सकोगे?

—रुपये मैं नहीं दूंगा। नानी बेगम साहिबा ही देंगी। कितने रुपये लगेंगे, कहो?

—सौ अशर्फियां।

कैम्पबेल बोला—नवाब को पैसों की कोई कमी नहीं। एक सौ अशर्फियां ही देने के लिए कह दूंगा।

—वचन दे रहे हो?

—रुपये क्या पहले देने पड़ेंगे ?

—पहले देने से अच्छा रहेगा। व्यापारी आदमी हूं। रुपये पहले मिलने से कारोबार में सुविधा होती है।

—ठीक है। एडवान्स के रुपये नानी बेगम से मांग लूंगा।

अमीचन्द से बात कर के उसी दिन साहब कलकत्ता से कासिम बाज़ार लौट आया। वह बड़ा खुश दिख रहा था।

कलेट तो कैम्पबेल का चेहरा देखकर ताज्जुब में पड़ गया। बोला—क्यों ? बिल्ला मिल गया क्या ?

—मिल गया है। अमीचन्द ने कहा है कि काबुल से मंगवा देगा।

कलेट बोला—अमीचन्द के फन्दे में पड़ गए। फिर तो तुम्हें बिल्ला मिल चुका। आदमी बड़ा ही डिसऑनेस्ट है। कितने रुपये मांगे हैं ?

—एक सौ अशर्फियां। खैर, मुझे क्या ? रुपये तो मैं अपनी पाकिट से नहीं दे रहा। जिसकी बिल्ली है वही देगी। और फिर नानी बेगम साहिबा को पैसों की क्या कमी !

चेहल सतून से कैम्पबेल साहब को फिर दावत मिली। मीर मुंशी साहब को बुलाने के लिए पहुंचा।

—क्या बात है मीर मुंशी ? गुलज़ारी बाई कैसी है ? कैम्पबेल साहब ने पूछा।

—चेहल सतुन में आपको याद किया गया है। आपको एक बार और चलना पड़ेगा, हकीम साहब !

कैम्पबेल के लिए यह अच्छा ही हुआ। फिर वही तंजाम, फिर वही पंजा।

लेकिन बीमार महल में घुसते ही कैम्पबेल हैरान हो गया।

—तुम बीमार हो ?

मुमताज़ थोड़ा मुस्कराई।

—हंस क्यों रही हो ? बीमार नहीं हो ?

—बीमार तो हूं साहब, नहीं तो झूठ-मूठ तुम्हें क्यों बुलवाती ?

—परन्तु बीमार तो तुम दीख नहीं रही हो।

ये बातें पर्दे की आड़ में ही हो रही थीं।

कैम्पबेल बोला—ज़रा हाथ बाहर निकालना, देखूं।

मुमताज ने जाली के पर्दे के बाहर अपना हाथ निकाला। साहब ने मुमताज का हाथ अपने हाथों में लिया। बड़ा ही मुलायम। मक्खन की तरह मुलायम और सफेद हाथ था मुमताज का।

बहुत देर तक उसके हाथ को साहब ने अपने हाथों में पकड़े रखा।

—इतनी देर तक क्या देख रहे हो साहब ?

—तुम्हें तो कुछ भी नहीं हुआ है मुमताज !

—लेकिन, यकीन मानो साहब, मेरी तबियत खराब है। मैं और नहीं सह सकती।

—मुझसे ऐसी बातें मत कहो मुमताज। शायद तुम्हें कहना भी नहीं चाहिए, कैम्पबेल बोला।

—क्यों, तुम्हें डर लगता है ?

—मैं तो इण्डियन नहीं हूं मुमताज। मुझे यह सब मत कहो। कोई सुन लेगा तो तुम बर्बाद हो जाओगी।

—हमारी बातचीत कोई नहीं सुन सके इसका इन्तजाम मैंने कर लिया है।

—क्या प्रबन्ध किया है तुमने ?

—चेहल सतून में हमारा जो खोजा सरदार पिराली खां है उसे मैंने रिश्वत दी है।

—क्यों ख्वामख्वाह रिश्वत देने गई। तुम्हारे पैसे बेकार गए।

मेरे पास के पैसों की क्या कोई कमी है साहब ? बहुत रुपये हैं। मेरे आदमी के पास बहुत धन था। मैं सब साथ लाई हूं—लाख-लाख रुपये। यह बात किसी को मालूम नहीं है।

—अगर तुम्हारे पास इतने रुपये हैं तो फिर इस चेहल सतून में क्यों आई ?

—इन्हीं रुपयों के डर से।

—रुपयों का डर था ?

—साहब, यदि बुरा न मानो तो कहूं। रुपयों का डर तो था ही, पर असल डर मेरे इस रूप का था। अगर मैं चाहती तो अपने रूप से इस चेहल सतून में आग लगा सकती थी। अगर मेरा आदमी जिन्दा रहता तो मुझे किसी बात का डर नहीं था लेकिन आज मैं बेवा हूं।

—लेकिन आज अगर तुम चाहो तो क्या इस चेहल सतून के बाहर निकल

सकती हो ?

—नहीं साहब ! अब कोई रास्ता नहीं।

थोड़ी देर रुककर मुमताज़ ने कहा—इसीलिए तो तुम्हें बुलाया है, साहब ! तुम मुझे बचा लो।

कैम्पबेल डर गया। असहाय दृष्टि से चारों तरफ देखने लगा।

—तुम डरो नहीं साहब ! यहां कोई नहीं आएगा। मैंने रुपये देकर सभी खोजा लोगों को हटा दिया है और खोजा सरदार बीमार-महल के दरवाज़े पर पहरा दे रहा है।

—तुम मेरा लालच मत बढ़ाओ मुमताज़ ! मैं सड़क चलता एक राहगीर हूं। रुपये-पैसे, नौकरी-चाकरी कुछ भी नहीं है मेरे पास। कासिम बाज़ार की कोठी के साहबों की दया से पेट-भर खाना मिल जाता है सिर्फ।

—लेकिन साहब, तुम एक हकीम हो। हकीमी तुम्हारी चलती भी है। सबको दवाई भी देते हो, फिर ?

साहब बोला—मैं हकीम ज़रूर हूं, लेकिन रुपये-पैसे किसीसे मैं लेता नहीं। इण्डिया आकर ही तो मैंने हकीमी सीखी है, इसलिए रुपये लेने में मुझे शर्म आती है।

—तुम्हें रुपयों की ज़रूरत है साहब ? मुमताज़ ने पूछा।

कैम्पबेल हंस दिया। बोला—कलेट मेरा फ्रेण्ड है। वही मुझे खिलाता है। रुपयों की मुझे ज़रूरत नहीं।

—अच्छा, एक काम करोगे ?

—बोलो क्या काम है ?

—मैं अब यहां नहीं रहूंगी। यहां से चली जाऊंगी।

—क्यों ?

—यहां रहना मुझे अच्छा नहीं लगता।

साहब ने अवाक् होकर पूछा—लेकिन गुलज़ारी बाई ? उसका क्या होगा ? उसकी जोड़ी के लिए तो मैं सारा बन्दोबस्त भी कर चुका हूं।

—क्या बन्दोबस्त किया है साहब ?

—अमीरचन्द को कहकर काबुल से एक बिल्ला मंगवाने का इन्तज़ाम किया है।

—यह सब करने के लिए तुम्हें किसने कहा था ?

—क्यों ? तुमने ही तो कहा था। भूल गई ?

—मुझे कुछ भी याद नहीं। मैं तो सब कुछ भूल चुकी हू साहब !

—तुम भूल सकती हो, लेकिन मैं कैसे भूलू। यहां से जाने के बाद से सिर्फ गुलजारी बाई के लिए ही सोचता रहा हूं।

—ताज्जुब है।

—क्यों, ताज्जुब किस बात का है ?

—ताज्जुब की बात ही तो तुमने कही है साहब। एक जीती-जागती लड़की को छोड़कर एक बिल्ली के लिए परेशान हो ?

—तुम्हारे लिए भी सोचा था, मुमताज ! जब भी गुलजारी बाई के लिए सोचता, तुम्हारी याद भी आती।

—क्यों ? गुलजारी बाई के लिए सोचने पर मेरी याद क्यों आती ?

साहब हंसा। बोला—मेरी जुबान से ही सुनना चाहती हो ?

मुमताज बोली—यहां कोई नहीं सुन रहा है। तुम कहो साहब। मैं तुम्हारे मुह से ही सुनना चाहती [illegible]। मैंने पिराली खां को भी इधर आने के लिए मना कर रखा है। बीमार-महल में अभी कोई नहीं है साहब। सिर्फ हम दोनों।

—क्यों ? गुलजारी बाई बीमार है। वह भी तो इस बीमार-महल में होगी।

—उसकी बात छोड़ो। क्या वह कोई आदमी है ?

साहब बोला—तो तुम केवल आदमी से ही डरती हो ?

—हां साहब। आदमी ही मेरा दुश्मन है तुम सच मानो, बेवा होने के बाद मुर्शिदाबाद के आदमियों ने ही मुझे सबसे अधिक सताया है। ख़ास तौर से वे, जो बड़े लोग हैं।

—वे कौन लोग हैं ? साहब ने पूछा।

—नवाब के यार-दोस्तों का गुट। शफीउल्ला खां, मुहम्मद निसार। मगर उस दिन मैं चेहल सतून नहीं आती तो इनके हाथों से मैं बच ही नहीं सकती थी। मैं जानती थी कि चेहल सतून में एक बार अन्दर आने के बाद बाहर की दुनिया मेरे लिए मिट जाएगी। लेकिन और कोई रास्ता नहीं था। क्या करती ? इसी का सहारा लेना पड़ा।

—लेकिन अब तो वे तुम्हें तंग नहीं कर सकते ?

शफीउल्ला खां ने तो अब भी उम्मीद नहीं छोड़ी है। वह समझता है कि मैं लवारिस हूं, कहीं की नहीं हूं—घर की न घाट की, इसीलिए मुझपर वह अपना अधिकार समझता है।

—तुम कहना क्या चाहती हो मुमताज़ ?

—इतना ही कहना चाहती हू साहव कि तुम मुझे बचा लो। मैं बीमार रहूं या नहीं, पर तुम कभी-कभी आते रहना। मैं नानी बेगम साहिबा को कहकर मीर मुंशी के हाथ पंजा भेज दूंगी।

अचानक पर्दे के पास ही पैर की आहट सुनाई दी।

—कौन ? मुमताज़ डर गई थी। पूछा—वहां कौन है ?

—मुमताज़ !

आवाज़ सुनकर ही मुमताज़ चौंक उठी थी। बोली—तुम आज जाओ साहव। मैं तुम्हें फिर बुलाने के लिए मीर मुंशी को भेजूंगी।

उस दिन साहव पूरे सम्मान के साथ चेहल सतून के बाहर आया।

यह घटनाक्रम इसी तरह से आगे चल रहा था। पर अधिक दिन तक नहीं। अचानक कलकत्ता कम्पनी दफ्तर से खबर आई कि यूरोप में अंग्रेज़ों के साथ फ्रांसीसियों की लड़ाई छिड़ गई है। उसी दिन कलेट कलकत्ता चला गया। जाने के पहले उसने कैम्पवेल को बुलाया। पूछा—तुम कलकत्ता चलोगे वेल ?

—क्यों ? मैं कलकत्ता जाकर क्या करूंगा ?

कलेट बोला—देखो वेल, पहले हमारा एक एनिमी था, एक के साथ समझौता करना ही पड़ रहा था कि अब हमारे दो फ्रण्ट हो गए हैं। ड्रेक चिन्ता में पड़ गया है उधर एडमिरल वाटसन नाम का एक व्यक्ति आ रहा है, साथ में क्लाइव भी···

—क्लाइव ? वह कौन है ?

—मद्रास की कोठी का आदमी है। मद्रास के सेंट फोर्ट डेविड को जीतने के बाद वह फेमस हो गया है।

कलेट का चेहरा देखकर ही कैम्पवेल समझ गया था कि कलेट डरा हुआ है।

फ्रांसीसी लोग मुर्शिदाबाद के नवाब के दोस्त थे। अगर वे चाहते तो कलकत्ता से अंग्रेज़ों को हटाया भी जा सकता था।

—तुम नहीं चलोगे वेल ? कलेट ने फिर पूछा ।

—नहीं भाई ! मैं तो नहीं जा सकूंगा ।

—क्यों कासिम बाजार में तुम्हारा कौन है ?

कैम्पबेल बोला—यह जगह मुझे बहुत पसन्द है ।

—क्यों ? कासिम बाजार में अच्छी लगने वाली कौन-सी चीज है ?

इस बात का कोई जवाब न देकर कैम्पबेल बोला—यहां तरह-तरह की डाक्टरी दवाएं हैं, यहां कलकत्ता की तरह पोलटिक्स नहीं है। कलकत्ता में कौन किसका कितना बिगाड़ सकता है, दिन-रात इसीकी होड़ मची रहती है ।

इतना कहकर बीच में ही वह अचानक बोला—कलकत्ता जाकर मेरा एक काम कर दोगे कलेट ?

—कहो क्या काम है ?

—तुम्हें मि० अमीचन्द से भेंट करनी होगी ।

कलेट बोला—भेंट तो होगी ही । सारी कौन्सपिरेसी तो अमीचन्द ही चला रहा है । वह नवाब का दोस्त और हमारा फ्रेण्ड है । वह हमें नवाब के सभी मूवमेण्ट बताता है ।

—तो फिर एक काम करना । अमीचन्द को जाकर कहना कि उस काबुली कैट की अब जरूरत नहीं है ।

—क्यों, गुलजारी बाई अच्छी हो गई है क्या ?

कैम्पबेल बोला—अच्छी तो नहीं हुई है, लेकिन अब उसकी जरूरत नहीं ।

—जरूरत क्यों नहीं है ? उस दिन तो तुम फिर चेहल सतून गए थे। किसे देखने गए थे ?

—वह गुलजारी बाई नहीं थी । मैं मुमताज बेगम को देखने गया था ।

—मुमताज बेगम ? वह कौन है ?

—वह गुलजारी बाई की केयर-टेकर है ।

—उसे क्या बीमारी है ? कलेट ने पूछा ।

—वह बीमार तो नहीं है पर बीमारी का बहाना बनाकर अक्सर मुझे बुला भेजती है ।

—इसका मतलब ?

—तुम किसीको मत कहना कलेट, वह मुझे प्यार करती है । शी लव्स मी ।

—ह्वाट डू यू मीन ! कलेट चौंक उठा था।

कैम्पवेल बोला—यस ! आई मीन ह्वाट आई से।

—और तुम ? तुम भी उसे प्यार करते हो ?

—हां कलेट !

कलेट कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ था, फिर धम्म से बैठ गया। बोला—सच ?

कलेट बोला—यह तुम्हारी गलती है, वेल। इट इज़ एन आफेन्स, ए क्राइम। तुम यूरोपियन हो, और वह एक इण्डियन। और केवल इण्डियन ही नहीं नवाब की सम्पत्ति है। उसे भगाने के लिए केवल तुम्हीं फांसी पर नहीं लटकोगे, कम्पनी को भी हानि होगी। हो सकता है कम्पनी को यहां से निकाल बाहर भी कर दिया जाए।

कैम्पवेल चुप रहा।

—मैं तुमसे अनुरोध करता हूं वेल, तुम चेहल सतून में अब से जाना बन्द कर दो। डोंट गो देअर।

कैम्पवेल सर झुकाकर खड़ा ही रहा।

—और यदि तुम हमारी बात नहीं मान सकते तो यहां तुम्हारा रहना भी अब ठीक नहीं। कम्पनी अगर जान गई तो तुम्हें यहां से जाना ही पड़ेगा। मैं लाख कोशिश के बावजूद तुम्हें यहां नहीं रख सकूंगा।

कैम्पवेल ने फिर भी कुछ नहीं कहा। और चुप ही रहा।

कलेट बोला—तुम्हें हो क्या गया है। चलोगे मेरे साथ कलकत्ता ? जवाब दो ?

कैम्पवेल फिर भी कुछ नहीं बोला। चुप्पी साधे जैसे खड़ा था, खड़ा ही रहा।

कलेट उसी दिन कलकत्ता चला गया।

कासिम बाज़ार की कोठी एकाएक मानो कैम्पवेल को वीरान-सी लगने लगी। कलेट चला गया था। चारों तरफ एक अजीब-सा ख़ालीपन था। कासिम बाज़ार के आकाश में उस दिन भी बहुत-से तारे उगे थे—बहुत-सी भावनाएं पंख पसारकर उस आकाश में उड़ती रहीं, पर अब सारी दुनिया एक नये रूप

में कैम्पबेल के सामने खड़ी थी।

—साहब! साहब!

आवाज़ यासीन की थी। पुराना यार! बहुत-से अड्डों का साथी। फिर भी कैम्पबेल का आज किसीसे बात करने का मन नहीं हुआ। वह चुप-सा पड़ा रहा।

कोठी का दरबान बोला—कौन?

यासीन ने पूछा—साहब हैं? बेल साहब!

दरबान बोला—साहब तो सो गया।

—इतनी जल्दी सो गया?

—जी हां!

—और क्लेट साहब?

—क्लेट साहब तो कलकत्ता चला गया।

यासीन वापस लौट गया। कैम्पबेल को सारी बातें सुनाई पड़ रही थीं, पर वह बिस्तर से उठा नहीं। उसे लग रहा था जैसे कि सभी मुमताज़ के दुश्मन हैं। सभी मिलकर मुमताज के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं। जो मुमताज़ के दुश्मन हैं, वे उसके भी दुश्मन हैं। लेकिन यासीन भी इतनी आसानी से टलने वाला आदमी नहीं था। रात को तो अपने घर वापस लौट आया, पर सारी रात सो नहीं सका। महमूद को बुलाकर कहा—देख, मैं मुर्शिदाबाद जा रहा हूं। कल लौटूंगा।

महमूद बोला—जी हुजूर!

रात में सारा मुर्शिदाबाद आतंकग्रस्त शहर-सा लग रहा था। कोतवाल ने शहर पर कड़ी निगरानी रखने का आदेश दे रखा था। समय भी अच्छा नहीं था। किसी भी समय फिरंगियों पर हमला करने के लिए नवाब निकल सकते थे। इसलिए सड़क से कोई भी गुज़रता तो उसे रोककर पूछा जाता—कौन? फिर उसका नाम और अता-पता पूछकर छोड़ दिया जाता। यदि थोड़ा भी शक होता तो रात-भर के लिए कोतवाली में बन्द कर दिया जाता।

अठारहवीं सदी का बंगाल बड़ा सतर्क रहता था। यहां का नवाब कच्ची उम्र का था, इसलिए सभी मौका ढूंढ रहे थे कि कब उससे मसनद छीन ली जाए और उसे कत्ल करके उसके शौक के मोतीझील पर कब्जा कर लिया जाए।

दूसरी तरफ फिरंगियों के अनुचर भी चारों तरफ नज़र रख रहे थे। वे

मौके की तलाश में थे। कोई हकीम बनकर तो कोई फकीर बनकर घूम रहा था।

—शफीउल्ला खां।

शफीउल्ला खां ऐसे ही घर में कम टिकनेवाला आदमी। उसपर नवाब का समय खराब चल रहा था। इस समय तो यार-दोस्तों को नवाब के आस-पास ही रहना चाहिए। मुहम्मद निसार, शफीउल्ला, यारजान सभी नवाब मिर्ज़ा मोहम्मद सिराजउद्दौला के दिन-रात के यार थे। जब तक नवाब सो न जाता, वे मोतीझील छोड़कर नहीं जाते। उस दिन भी काफी रात बीत चुकी थी। शफी-उल्ला घर लौटा ही था कि किसीने आवाज़ दी। खिड़की से झांककर शफी-उल्ला ने पूछा—कौन ?

—मैं···मैं यासीन हूं, यासीन खां।

—कौन यासीन ? कहां का यासीन ?

—कासिम बाज़ार का यासीन खां मुहम्मद।

—इतनी रात गए क्या खबर लाए हो ?

—खुदावन्द के साथ मुलाकात करने आया है यह गरीब। एक ज़रूरी बात थी।

ज़रूरी बात के नाम पर शफीउल्ला की आंखों से नींद गायब हो गई। सच, अगर एक ज़रूरी खबर मिल जाए तो वह नवाब को खुश कर सकता है। जहां भी कोई षड्यन्त्र हो, मिर्ज़ा को तो सब जानकारी रखनी ही चाहिए। जल्दी से बैठकखाने का दरवाज़ा खोलकर शफीउल्ला खां बाहर आया और बोला—आओ यासीन! दुनिया का हाल-चाल बताओ।

—हालचाल तो पूछिए ही मत। मौसम ही खराब है जनाब! फिरंगी कम्पनी तो सब कुछ बर्बाद करने पर तुली है।

—वह कैसे ? बैठो भई, आराम से बैठो! कोठी वाले साहब कहां गए ?

वह तब तक आराम से बैठ चुका था। बोला—यही खबर तो जनाब को देने आया था। सोचा, रात को आना ठीक है। चारों तरफ फिरंगियों के लोग-बाग घूम रहे हैं, मुझपर किसीकी भी नज़र पड़ सकती है।

—बोलो, खबर क्या लाए हो ? कोई खास खबर है ?

यासीन बोला—कोठी वाला साहब कलकत्ता चला गया।

—क्यों ?

—शायद अमीचन्द के साथ सलाह-मशविरा करने। हो सकता है फिरंगी लोग मुर्शिदाबाद पर हमला कर दें।

शफीउल्ला बोला—क्या बेवकूफ की तरह बात करते हो यासीन। आखिर चन्दन नगर में फ्रांसीसी लोग क्यों बैठे हैं ? तुम्हें पता होना चाहिए कि फ्रांसीसी नवाब के दोस्त हैं।

—मुझे इतनी बातें तो मालूम नहीं, पर इतना निश्चय के साथ जानता हूं कि क्लेट साहब कासिम बाजार में नहीं हैं।

शफीउल्ला भी थोड़ी देर तक सोचता रहा कि क्लेट साहब के कलकत्ता जाने के पीछे क्या रहस्य हो सकता है।

यासीन बोला—एक और खबर है हुजूर ! कैम्पबेल साहब की आपको याद होगी ?

—खूब याद है। वही साला हकीम न ?

—जी हां जनाब !

थोड़ी देर चुप रहकर यासीन फिर बोला—देखता हूं जनाब को सब कुछ याद है। हां, अमीर खुसरो की बेवा बेगम की याद भी होगी आपको ? वही मुमताज बेगम !

—बेहद याद है, यार ! याद कैसे नहीं रहेगी ?

—उसीकी खबर तो देने आया हूं हुजूर ! कैम्पबेल साहब तो हकीमी करने के लिए चेहल सतून में गया था—यह खबर तो मैंने आपको पहले ही दे दी थी।

—हां। नानी बेगम साहिबा की बिल्ली गुलजारी बाई की बीमारी के लिए ही तो साहब हकीम को बुलाया गया था। इसमें कौन-सी नई बात है ?

—शफीउल्ला ने थोड़ी नाराजगी में पूछा।

यासीन बोला—नहीं हुजूर ! बीमारी की बात तो बिल्कुल एक धोखा था !

—धोखा?

—जी हां, जनाब ! असल बात तो मुमताज बाई है। कैम्पबेल तो मुमताज बाई से प्यार करने लगे हैं। बाई को देखकर साहब का दिल आ गया है।

—तुमसे किसने कहा ?

—कलेट साहब ने।

—सच कह रहे हो ?

—जी हुजूर, बिल्कुल सच है !

यह सुनकर मन ही मन शफीउल्ला खां कुछ सोचता रहा। उसके बाद अन्दर जाकर कुछ मुहरें लाकर यासीन खां को देते हुए बोला—अभी इतनी ही लो। बाद में और भी दूंगा। और भी भारी-भरकम खबर लाना। मुझे इसके आगे की भी खबर चाहिए।

यासीन मुहरें अपने कुरते की जेब में रखकर उठ खड़ा हुआ और बोला—तकलीफ माफ कीजिएगा हुजूर ! ज़रूरी खबर थी इसीलिए रात को जनाब की नींद खराब करनी पड़ी।

शफीउल्ला खां के घर से यासीन सीधा मुर्शिदाबाद की सड़क पर उतर आया और पाकिट से मुहरें निकालकर गिनने लगा—एक-दो-तीन चार···

उस दिन फिर बराबर की तरह बुलावा पाकर कैम्पबेल साहब चेहल सतून आया। मुमताज़ की बीमारी तब भी ठीक नहीं हुई थी। बीमार रहने में ही उसका फायदा था। इसी बिना पर फिरंगी हकीम को जल्दी-जल्दी इत्तिला दी जा सकती थी। साहब हकीम के साथ बातचीत करने की भी सुविधा इस बीमार महल में ही थी।

इस दिन के लिए मुमताज़ ने पहले से ही सारा बन्दोबस्त कर रखा था। बहुत-सी मुहरें, जेवर, सोने-चांदी की एक गठरी बनाकर अपने पास छुपा रखी थी कि साहब के आने पर उसीके हाथ पर सब कुछ रख देगी। परन्तु कैम्पबेल साहब तो इन सब के लिए तैयार होकर आया नहीं था। बोला—यह मैं सब क्या करूंगा ?

मुमताज़ बोली—तुम कह रहे थे न, कि तुम्हारे पास रुपये-पैसे नहीं हैं, इसलिए तुम्हें यह सब दे रही हूं। हमारी गृहस्थी के लिए तो पैसों की ज़रूरत पड़ेगी।

—हमारी गृहस्थी माने ?—कैम्पबेल चौंक उठा।

मुमताज़ हंसी। बोली—वाह ! इतने भोले मत बनो। तुम्हारे साथ जब

मेरी शादी होगी तब खर्च के लिए पैसों की बहुत जरूरत होगी।

—तुम मुझसे शादी करोगी ?

—इतना सब कुछ होने के बाद अब तुम यह पूछ रहे हो साहब ! शादी नहीं करूंगी तो क्या तुम्हारी रखैल बनकर रहूंगी ? मैं तुम्हारी बीबी बनना चाहती हू।

कैम्पबेल डर गया। बोला—लेकिन मुमताज, शादी करने के लिए भी तो मेरे पास पैसे नही है।

—इसीलिए तो मैं अपनी सारी जमा पूंजी तुम्हें थमा रही हू, साहब !

—यह तो बहुत है मुमताज !

—तुम्हें देश लौटने के लिए बहुत रुपया चाहिए। जहाज के भाड़े के लिए भी तो रुपयो की जरूरत होगी। तुम इन रुपयों से एक जहाज खरीद लेना।

—जहाज ? जहाज खरीदकर मैं क्या करूंगा !

इसके आगे और कुछ सोचने मे भी कैम्पबेल डर रहा था। मुमताज के सामने ही वह हांपने लगा। ऐसी अजीबोगरीब स्थिति भी पैदा हो सकती है, ऐसा उसने कभी सोचा भी नही था।

मुमताज कहती ही गई—इधर हज पर जाने के नाम पर मैंने मक्का जाने का प्रबन्ध कर लिया है।

—उसके बाद ?

—तरीका मैंने सोच लिया है। तुम हमारे जहाज पर छापा मारना। हज पर जानेवाले एक जहाज को रोक भी नही पाओगे ? बोलो साहब ! यह काम कर सकोगे न ?

—क्या कह रही हो मुमताज ?

अब मुमताज अपनी सारी लज्जा, सारा संकोच छोड़कर बोली—अगर तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं इसी चेहल सतून मे खुदकशी कर लूगी।

कैम्पबेल साहब घबराकर थोड़ा पीछे की तरफ सरक आया।

—बोलो साहब, मेरे रुपये तुम लोगे न ? अपने दोनों हाथों से कैम्पबेल का हाथ पकड़ लिया मुमताज ने और बोली—जवाब दो साहब ! कुछ तो कहो !

—मुझे दो दिन सोचने के लिए समय दो मुमताज बाई। सिर्फ दो दिन

किसी तरह सब्र करो। मैं अपने दोस्त कलेट से पूछूंगा। यासीन खां मेरा और एक यार है, उसे भी पूछना पड़ेगा, सलाह लेनी पड़ेगी।

—ऐसी बात मत करो साहब ! मुमताज़ ने अपने हाथों से साहब का मुंह थाम लिया। बोली—दिमाग के नाम पर तुम्हारे पास कुछ नहीं है, साहब ! ऐसी बातों के लिए किसीसे क्या सलाह-मशविरा करना चाहिए ? चेहल सतून के अन्दर की बात बाहर नहीं जानी चाहिए···तुम भूल गए ? ऐसी गलती के अंजाम में मुझे तो मरना ही पड़ेगा, तुम्हारा कत्ल हो जाएगा।

—लेकिन सोचने के लिए मुझे थोड़ा समय तो देना ही पड़ेगा मुमताज़ बाई !

—सोचने का वक्त ही अब कहां है साहब ?

—सिर्फ दो दिन। दो दिन के अन्दर ही मैं तुझे खबर करूंगा।

—शायद तुम समझ ही नहीं सकते साहब कि मैं कितने खतरे में हूं।

—कैसा खतरा ?

—शफीउल्ला खां को खबर हो गई है।

—कैसी खबर ? कौन शफीउल्ला खां ?

—नवाब के दोस्त शफीउल्ला खां को खबर मिल गई है कि मैं हज पर जाने की कोशिश कर रही हूं। नानी बेगम साहिबा को भी मैंने अपने साथ जाने के के लिए राज़ी करवाया है।

कैम्पबेल साहब बड़ी मुश्किल में पड़ गया। बोला—मैं जहाज़ कैसे खरीदूंगा ? जहाज़ के बारे में मैं कुछ नहीं जानता।

—तुम फिरंगी हो, मर्द हो, जहाज़ खरीदने जैसा एक मामूली काम भी नहीं कर सकते ?

—इससे पहले तो मैंने कभी जहाज खरीदा नहीं। जहाज़ पर चढ़कर केवल हिन्दुस्तान आया हूं—और छापा भी कैसे मार पाऊंगा—कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

—कुछ भी हो। मेरी यह चीजें तुम्हें लेनी ही पड़ेंगी।

—दो दिन का समय भी नहीं दोगी ?

—दो दिन का समय बहुत लम्बा समय है साहब ! इस बीच शफीउल्ला खां सारा पैसा हड़प लेगा। उसी शफीउल्ला के डर से मैं बीमार-महल में पड़ी

रहती हूं। बीमारी का बहाना बनाती हूं।

—ठीक है। तुम दे रही हो, इसलिए ले रहा हूं।—कहकर जेवरों और मुहरों से भरे थैले को उसने उठा लिया।

—मैं खोजा सरदार पिराली खां के द्वारा तुमको खबर दूंगी कि मैं किस दिन हज करने के लिए निकल रही हूं और किस तारीख को मुर्शिदाबाद से जहाज छूटेगा।

—अकेली जाओगी ?

मुमताज बोली—इतनी जल्दी भूल गए ? अभी-अभी तो कहा न कि नानी बेगम साहिबा भी जाएंगी।

—अच्छी बात है। अब मैं चलता हूं।

—तुम्हें छोड़ने का मन नहीं करता साहब ! तुमसे दूर भी नहीं रह सकती। मैं तुम्हें जल्दी ही खबर भेजूंगी। समझे न ? इस बीच तुम उन रुपयों से एक जहाज खरीदने की कोशिश करना। यह रुपया मेरा अपना है—उसे तुम अपना ही समझना।—इतना कहकर बीमार-महल के दरवाजे तक वह साहब को छोड़ गई।

चलते समय कैम्पबेल मुड़कर बोला—सलाम आलेकुम ! मुमताज हंसी। बड़ी उदास-सी हंसी। बदले में सलाम लौटाना भी भूल गई।

तंजाम रुका पड़ा था। साहब को लेकर चेहल सतून के बाहर चल पड़ा।

बंगाल मुल्क का वह एक दुस्समय ही था। मुर्शिदाबाद का जनजीवन बेचैन और अस्थिर था। रोज तरह-तरह की अफवाहें सुनने को मिलतीं। कभी कोई उड़ाता कि फिरंगी लोग मुर्शिदाबाद पर हमला करने आ रहे हैं तो कभी कोई कहता कि नवाब फिरंगियों से लड़ने के लिए जा रहा है।

लोग आतंक और भय से दिन काट रहे थे। नवाब अलीवर्दी के बाद से मानो सबकुछ उलट-पलट गया था। कभी किसी रात को फौजी छावनी में हल्ला मचता कि फिरंगियों ने धावा बोल दिया है। लोग भय से चिल्ला उठते। बाप बेटी को जगाकर बोलता—उठ, उठ जा बेटी ! लड़के, लड़की, पत्नी सभी जाग जाते और भय से थरथराने लगते। सोचते—मंगोल-आक्रमण के समय की तरह ही क्या घर-गृहस्थी छोड़कर भागना पड़ेगा !

लेकिन शफीउल्ला, निसार मुहम्मद और यारजान को कोई डर नहीं था। वे सीना तानकर चल-फिर रहे थे। उस दिन नानी बेगम के दरबार में खोजा सरदार पिराली खां हाज़िर हुआ।

—कौन?—नानी बेगम साहिबा ने पूछा।

—पिराली खां हाज़िर है नानी बेगम साहिबा!

—शफीउल्ला खां तशरीफ लाए हैं?

—जी हां!

शफीउल्ला कई दिनों से लगातार नानी बेगम के पास इत्तिला भेज रहा था। नानी बेगम उठकर दरबार-महल की ओर चलीं।

—बन्दगी नानी बेगम साहिबा!

—क्या खबर है शफीउल्ला?

—नानी बेगम साहिबा की खिदमत में मैं कई बार पेश हो चुका हूं। आज फिर एक बार जरूरी खबर लाया हूं।

—सुनाओ, क्या खबर लाए हो!

—खबर तो मुमताज़ बेगम की है।

नानी जी बोलीं—वह तो तुम मिर्ज़ा को भी कह सकते थे, बेटे! मेरे पास क्यों आए? मैं तो आजकल कुछ देखती-सुनती नहीं।

—मिर्ज़ा मोहम्मद इन दिनों काफी व्यस्त रहता है, इसीलिए तो आपको कहने आया हूं।

—बोलो, क्या कहना चाहते हो?

—आप हज करने के लिए मक्का जा रही हैं?

—किसने कहा?

—मैं सब कुछ सुन चुका हूं नानी बेगम! यह भी सुना है कि आपके साथ मुमताज़ बाई भी जा रही है?

—अच्छा···पर तुम्हें कैसे मालूम?

शफीउल्ला बोला—यासीन···कासिम बाज़ार की कोठी में रखे मेरे एक जासूस ने बताया है।

—हज में जाना तो कोई गुस्ताखी नहीं।

—गुस्ताखी माफ करें नानी बेगम साहिबा, पर मुमताज़ बाई के मन में कु

भौर ही है।

—क्या मतलब ? कहना क्या चाहते हो ?

—जी नानी जी, ठीक ही कह रहा हूं। कासिम बाज़ार की कोठी के हकीम कैम्पबेल साहब को मुमताज़ बाई ने अपना सारा पैसा जहाज़ खरीदने के लिए दे दिया है।

—जहाज़ ? जहाज़ खरीदने के लिए मुमताज़ ने उसे पैसे दिए हैं ? क्या होगा जहाज़ खरीदकर ?

—मुमताज़ बाई को रास्ते में लूटकर वह ले भागेगा और उससे शादी करेगा।

नानी बेगम उदास, अनमनी-सी हो गई। बोली—तुम सच कह रहे हो ?

—बिलकुल सच कह रहा हूं नानी बेगम साहिबा !

—ये सारी बातें यासीन की कही हुई हैं।

—जी हां ! यासीन खां कासिम बाज़ार कोठी का सरकारी जासूस है।

—यासीन को मेरे सामने बुलाकर यहां ला सकते हो ?

—जी हां ! वह बाहर ही खड़ा है।

—बुलाओ उसे !

शफीउल्ला यासीन को बुलाने के लिए चेहल सतून के बाहर चला गया।

कैसे और किस भूल से सब कुछ पर पानी फिर गया, यह मुमताज़ भी नहीं समझ सकी और कासिम बाज़ार की कोठी के कैम्पबेल साहब भी नहीं समझ सके। कैम्पबेल साहब तो सिर्फ एक जहाज़ खरीदने के लिए बेचैन होकर दौड़-धूप कर रहे थे।

कलेट ने भी कैम्पबेल से वही बात पूछी—तुम जहाज़ खरीदकर क्या करोगे ?

अपने दोस्त यासीन खां को भी कैम्बेल ने जहाज़ खरीदने में मदद करने के लिए कहा था।

साहब की बात सुनकर यासीन भी ताज्जुब में पड़ गया था। बोला—जहाज़ खरीदकर तुम क्या करोगे साहब ? पेशा बदलोगे क्या ? डाक्टरी छोड़कर डकैती करोगे ?

कैम्पवेल वोला—मज़ाक मत कर यार। थोड़ी मदद कर। जहाज़ मुझे चाहिए ही।

अन्त में जहाज़ की खोज में कैम्पवेल कासिम वाज़ार छोड़कर कलकत्ता चला गया और सीधा अमीचन्द के घर जा पहुंचा।

अमीचन्द तो कैम्पवेल को देखकर हैरान रह गया। वोला—तुम? कहां थे इतने दिनों तक? क्या कर रहे थे?

कैम्पवेल ने वड़ी नम्रता से कहा—अमीचन्द मुझे एक जहाज़ खरीदकर दे सकते हो?

—जहाज़? जहाज की वात सुनकर अमीचन्द भी हैरान रह गया। वोला—क्या करोगे कैम्पवेल साहव ज़हाज़ खरीदकर? पेशा वदल रहे हो? हकीमी छोड़ रहे हो?

—नहीं अमीचन्द, हमें एक जहाज़ की सख्त ज़रूरत है। जितने भी रुपये लगें, मैं दूंगा। मेरे पास वहुत-से रुपये हैं, पैसों की कोई कमी नहीं। यह देखो—कहकर कैम्पवेल ने अमीचन्द की आंखों के सामने हीरे-जवाहरातों से भरी वह पोटली खोल दी।

—यह क्या है? इतनी मुहरें? इतने जेवर! ये सव किसके हैं? कहां से मिले!

—किसीसे कहना मत अमीचन्द! अव इसे मेरा ही धन समझो और इस धन से मुझे जहाज़ खरीद दो।

—लेकिन जहाज़ की कीमत तो वहुत ज़्यादा होती है।

—कितनी?

अमीचन्द भांप गया कि साहव कहीं फंसा है! पूछा—वह कावुली कैट अव नहीं खरीदोगे?

कैम्पवेल साहव वोले—नहीं। अव एक जहाज़ खरीदूंगा। विल्ले की ज़रूरत नहीं।

अमीचन्द वोला—ठीक है। तुम मेरे पास गहने और रुपये छोड़ जाओ। जहाज़ खरीदकर तुम्हें हिसाव दे दूंगा।

हीरे-जवाहरातों से भरे थैले को अमीचन्द के हाथों में थमाकर कैम्पवेल उठ खड़ा हुआ। उसे उसी वक्त कासिम वाज़ार वापस लौटना था।

साहब बोला—गुड बाई, गुड बाई अमीचन्द !

अमीचन्द जेवरों के थैले को संभाल रहा था। बोला—थोड़ी देर और नहीं बैठोगे साहब ? मेरे पास अच्छा ड्रिंक है।

कैम्पबेल उठ ही चुका था। बोला—नहीं अमीचन्द, मेरे पास समय कम है। हो सकता है चेहल सतून से अभी बुलावा आ जाए।

—क्यों भई ? गुलज़ारी बाई की बीमारी ठीक नहीं हुई ?

कैम्पबेल चलते-चलते पीछे मुड़कर बोला—नहीं।

अमीचन्द सब की नज़र बचाकर अपने कमरे में गया—बत्ती अपने हाथों से जलाई और सन्दूक को खोला। अचानक पीछे से किसीने आवाज़ दी।

—कौन ?

—मैं जगमोहन, हुज़ूर !

जल्दी से सन्दूक बंद कर अमीचन्द बाहर आया। जगमोहन खड़ा था। बोला—हुज़ूर, वह फिरंगी हकीम साहब फिर आए हैं।

—फ़िरंगी हकीम साहब ?

उत्तर के रूप में फिरंगी हकीम कैम्पबेल स्वयं ही कमरे के अन्दर खड़ा था।

अमीचन्द ने बड़े सहज भाव से पूछा—क्या बात है कैम्पबेल साहब ?

साहब हांफ रहा था। बोला—नवाब कम्पनी के साथ लड़ाई करने के लिए आ रहा है।

—क्या बक रहे हो ?

साहब बोला—मैंने अपनी आंखों से देखा है। कलकत्ता से लोग भाग रहे हैं। कलकत्ता के किले की तरफ़ हालसी-बागान की तरफ़ नवाब के सैनिक दौड़ रहे हैं।

अमीचन्द के सर पर मानो गाज गिर पड़ी। बोला—तुम अन्दर आ जाओ साहब ! देखूं मैं क्या कर सकता हूं।

कैम्पबेल मकान के अन्दर आ गया। दूसरी तरफ़ नवाब की फ़ौज कलकत्ता के और नज़दीक पहुंच गई।

चेहल सतून के अन्दर उस समय एक और ही उत्सव मनाया जा रहा था।

दूल्हे के वेष में शफीउल्ला खां सजा-धजा बैठा था। नानी बेगम साहिबा ने चेहल सतून के अन्दर ही शादी का बन्दोबस्त किया था। मौलवी भी आ चुका था।

मुमताज़ बाई अपने महल में सज रही थी। वह बहुत देर तक सजती रही। आज दूसरी बेगमों के लिए भी त्योहार का दिन था।

नौबतिया नौबतखाने से लगन का राग बजा रहा था। पेशमन बेगम, बब्बू बेगम, लुत्फा बेगम, सभी ने आज मुमताज़ बेगम की शादी के लिए शृंगार किया था। बहुत अर्से के बाद चेहल सतून में एक आनन्द का उत्सव हो रहा था। सभी खुश थीं। खोजा सरदार पिराली खां को दम लेने की फुर्सत नहीं थी। मौलवी ने तकादा किया—नई बीबी कहां है ?

नानी बेगम साहिबा ने जुबेदा को कहा—जल्दी से जा। मुमताज़ को बुला ला। सजने में भी इतनी देर कहीं लगती है ?

शादी के उपलक्ष्य में शफीउल्ला के दोस्त निसार मुहम्मद, यारजान सभी आए थे। शफीउल्ला अधीर होकर मुमताज की राह देख रहा था। अचानक उल्टे पांव जुबेदा खबर लाई—सर्वनाश हो गया नानी जी।

कैसा सर्वनाश ? क्या बोल रही है ?

—मुमताज़ बाई ने जहर खा लिया नानी बेगम साहिबा !

इस कथन के साथ ही अठारहवीं सदी के बंगाल की एक लड़की का जीवन खामोशी की तह में सदा के लिए समा गया।

किसी दिन बहुत दूर देश से घूमता हुआ एक लड़का यहां इस देश में आ पड़ा था। लेकिन आज ? कहां रही उसकी मुमताज़ बाई और कहां रहा वह ? एक बिल्ली गुलजारी बाई को लेकर यह कहानी शुरू हुई थी···पर उसका अन्त बहुत मर्मान्तिक है।

नवाब मिर्ज़ा मुहम्मद सिराजउद्दौला के आक्रमण से जब फिरंगियों की फौज कलकत्ता छोड़कर भाग रही थी, जब अमीचन्द का मकान आग की लपट में जल रहा था, तब एक और प्राणी भी था जिसकी यन्त्रणा को कोई नहीं जान सका। वह यन्त्रणा थी मुमताज़ बाई की, जो अब सभी यन्त्रणाओं को पीछे छोड़ शांति की खोज में चली गई। इतिहास में मुमताज़ बाई का नाम किसीने नहीं लिखा। कैम्पबेल साहब के लिए भी किसीने दो शब्द नहीं लिखे। और जिसको

उपलक्ष्य बनाकर यह कहानी बनी, उस गुलजारी बाई का उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

चेहल सतून के साथ ही इनका नाम भी सबके मन से मिट गया।

और कैम्पबेल साहब ? अमीचन्द का मकान जब भयकर आग की लपेट मे था—उसी आग की लपट मे साहब भी जल मरा या नही, इसका प्रमाण भी कही नही मिलता।